अक्तूबर 2007 – मार्च 2008

वर्ष : 39-40 * अंक 4/1

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

भा. प. अ. केंद्र में विकसित संयंत्र

अधिकतम ताप एवं दाब पर्यावरण में पदार्थ अध्ययन हेतु उपकरण

: मूल्य :
20 रु.

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 2008

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित **हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता** हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं । लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए । लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है । **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों / फोटोग्राफों, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्त्व दिया जाता है।** अत: चित्रों को अलग से सफेद कागज / ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें । फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हों तो उचित रहेगा । इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें । नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्द) भेजें ।

अंतिम तिथि : 15 दिसंबर 2008

: पुरस्कार :

प्रथम	-	2000/= रु.
द्वितीय	-	1500/= रु.
तृतीय	-	1000/= रु.
प्रोत्साहन	-	500/= रु.

पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार 500/- रु. (प्रत्येक) के दिये जायेंगे । अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें ।

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं ''वैज्ञानिक'' की संपत्ति होगी। ''वैज्ञानिक'' पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे । यदि रचना एक ही लेखक द्वारा लिखी गयी हो तो उचित होगा।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री. कुलवंत सिंह, प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक ''वैज्ञानिक'',
वैज्ञानिक अधिकारी, पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD), मॉड लैब,
भा. प. अ. केंद्र (B.A.R.C), मुंबई - 400 085. फोन : 022 2559 5378

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 39-40 अंक 4/1

अक्तूबर 2007 - मार्च 2008

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री. कुलवंत सिंह
(संयोजक)

डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री नंद लाल सोनी
श्री सत्य प्रभात प्रभाकर
श्री संजय गोस्वामी

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)

श्री जय प्रकाश त्रिपाठी
श्री कवींद्र पाठक
श्री शिव कुमार सिंह

वार्षिक शुल्क

आजीवन	संस्थागत	व्यक्तिगत
400 रु.	100 रु.	50 रु.

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई - 400 085.

संपादकीय 3

लेख

1. अतिक्रांतिक द्रव 5
   - डॉ. प्रदीप कुमार
2. हमारी धरती और प्रलय : अतीत, वर्तमान तथा भविष्य 8
   - डॉ. अवधेश शर्मा
3. भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र द्वारा अंटार्कटिका का पर्यावरणीय अध्ययन 13
   - टी. वी. रामचंद्रन एवं ए.वी. साठे
4. बुढ़ापे की जीन का 'जीने' के लिए प्रोगामन संभव 19
   - विजन कुमार पाण्डेय
5. कांच-सिरामिकों के विभिन्न पहलू 22
   - डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
6. ऊष्मीय, तैलीय एवं नाभिकीय प्रदूषण : कारण, समस्याएँ एवं बचाव 28
   - डॉ. गणेश कुमार पाठक एवं सुनीता चौधरी

टिप्पणियां

1. भाषा वृक्ष की प्राचीनता 34
2. एशियाई भाषाओं का तेजी से विकास 34
3. भाषा-परिवारों ने की यात्रा कृषि के साथ - साथ 35
   - बालकृष्ण काबरा 'एतेश'
4. भारतीय समाज में शाकाहारी खाद्य संस्कृति का इतिहास 36
   - शिवेंद्र कुमार पांडे,
5. प्रदूषण से हो रहा है जलवायु परिवर्तन 38
   - डॉ. कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी
6. उत्तरांचल में सुगंधित पादपों से आर्थिक समृद्धि 39
   - डॉ. नवीन कुमार बौहरा

✪ "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

✪ "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।

✪ "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा ।

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री को आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं । परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है ।

विज्ञान कविताएं

1. **समझो हो ही गया....** – डॉ. रश्मि वार्ष्णेय 18

2. **एटम और भगवान** – कवि कुलवंतह सिंह 42

3. **वन की पुकार** – डॉ. शैलेंन्द्रकुमार 46

विज्ञान कथा

प्रतिरोध – डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय 43

विज्ञान समाचार

✪ भा. प. अ. केंद्र से 47

✪ अन्य समाचार 50

कुछ फूल : कुछ कांटे 52

आवरण पृष्ठ पर दिये गये चित्र का विवरण. . .

इस फोटोग्राफ में अधिकतम ताप एवं दाब पर्यावरण में पदार्थ के अध्ययन हेतु निर्मित उपकरण एवं संबद्ध उच्च तीव्रता के पीको सेकेंड लेजर (Nd : YAG) प्रणाली को दिखाया गया है । इसमें एक मुख्य लेजर दोलित्र (OSC) है जो 100 मिली जूल की ऊर्जा प्रति स्पंद देता है । इस श्रृंखला में प्रवर्धक युक्तियों के बाद लेजर पुंज को मुख्य लेजर–प्लाज्मा पारस्पारिक क्रिया कक्ष (दांयी ओर) में पहुंचाया जाता है । मुख्य कक्ष में उचित पंपों (बांयी तरफ देखे जा सकते हैं) की सहायता से 10^{-6} टॉर का निर्वात पैदा किया जाता है । चित्र में XRD1 तथा XRD2 एक्सरे संसूचक हैं जिन्हें अध्ययन के दौरान उत्पन्न संकेतों के निदान (पहचान) के लिए प्रयुक्त किया जाता है । FC1 (चित्र में नही देखा जा सकता) तथा FC2 दो फैराडे कप हैं । एक पिन–होल कैमरे द्वारा प्लाज्मा के प्लूम (Plume) को रिकॉर्ड किया जाता है जबकि आयन ऊर्जा विश्लेषक (Ion energy analyser) द्वारा प्लूम से उत्पन्न आयन स्पेक्ट्रम में होने वाले परिवर्तनों को मापा जाता है ।

संपादकीय

जैवीय-कांच एवं-सिरामिक : चिकित्सा में नयी दिशा

चिकित्सा के क्षेत्र में चतुर (स्मार्ट) दवाई की गोली बनाने के प्रयासों में हार्वर्ड प्रोफेसर डॉ. रॉबर्ट लैंजर * का मानना है कि ऐसी युक्तियां संभव हैं जिनके द्वारा शरीर में बिना सुई प्रवेश कराये दवाई को लक्ष्य पर पहुंचाया जा सकता है। कैंसर प्रभावित क्षेत्र में दवाई को सीध रोपित किया जा सकता है। जहां से वह आवश्यकतानुसार दवाई भेजकर केवल विषाणु कोशिकाओं को नष्ट कर सकता है। इनमें जैव-पदार्थ की भूमिका अहम् है। जिसमें जैवीय-कांच तथा-सिरामिक दोनों आते हैं। इन पदार्थों में खासतौर पर अस्थि मरम्मत एवं पुनर्प्राप्ति के लिए अभिनव सिरामिक बनाए गये हैं। ये सिरामिक (पदार्थ), जैव-सिरामिक कहलाते हैं क्योंकि इन्हें जीवित शरीर में विभिन्न रूपों में प्रयोग कर सकते हैं। उनकी प्रकृति के आधार पर इन्हें जैव-सक्रिय तथा जैव-अक्रिय वर्ग में रखा जाता है। जैव सक्रिय सिरामिक रिसॉरबेबल (resorbable) एवं नॉन-रिसॉरबेबल (non-resorbable) हो सकते हैं। ये पदार्थ बहुमणिभीय, कांचीय, कांच-सिरामिकीय तथा सिरामिक युक्त संश्लिष्ट रूपों में हो सकते हैं। जैव विज्ञान ने जब अस्थि का गहरा अध्ययन किया तो पाया कि यह एक समिश्र किस्म का जीवित ऊत्तक होता है जिसकी संरचना एक विशेष सुंदर पदानुक्रम (hierachical) रूप में होती है। यह कोलोजन नामक कार्बनिक प्रावस्था से बना संश्लिष्ट होता है जिसमें कैल्सियम युक्त अकार्बनिक मणिभ अंतस्थापित रहते हैं। हालांकि अस्थि अपने आप में एक अत्यंत सुदृढ संरचना है फिर भी चोट लगने तथा प्राकृतिक क्षय के कारण इनके टूटने की संभावनाएं बनी रहती है। अत: क्षतिग्रस्त अस्थिओं की मरम्मत तथा पुनर्प्राप्ति की आवश्यकता हमेशा से बनी है। शुरूआत में तो केवल इस बात पर ध्यान दिया गया कि मरम्मत के लिए प्रयुक्त पदार्थ किस प्रकार शरीर को कम से कम नुकसान पहुँचाए, ठीक कर सकें, परंतु आज हमारी सोच बदल गयी है। हम उन सिरामिक पदार्थों की खोज कर रहे हैं जो एक बार शरीर में प्रवेश करा दिये जाएं तो वे शरीर में पूर्णत: समाहित हो सकें। कांचीय पदार्थों के बारे में कुछ जानकारी वैज्ञानिक के अक्तूबर 2006-मार्च 2007 अंक तथा कांच-सिरामिक के बारे में कुछ जानकारी प्रस्तुत अंक में भी दी गयी है।

बताया जाता है कि जैवीय कांच का इतिहास 1967 में शुरू हुआ जब प्रो. लैरी हांश को वियतनाम युद्ध के दौरान लोगों के घावों के कारण अंगों को काटने की कीमत का अहसास हुआ। ऐसे पदार्थों की खोज करने की आवश्यकता महसूस हुई जो प्रचलित धात्वीय और पॉलीमर के रोपण प्रक्रिया में प्रयोग में आने वाले घटकों के साथ अंतर्पृष्ठीय संबंधों के बजाय ऊत्तकों को उनके साथ सीधे जुड़ कर ठीक करें।

हालांकि जैव-कांच सिरामिकों का उपयोग 40-50 वर्ष पहले सामने आया, परंतु 1968 के दशक के बाद इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण विकास हुए। जब जैवीय-कांच पर 1967 के आसपास काम हो रहा था उसी काल में जापान में प्रो. कोकूबो कुछ विशेष कांच-सिरामिकों के ऊपर काम कर रहे थे। असली सफलता उन्हें 1982 में मिली जब उन्होंने सबसे पहले A-W नामक कांच-सिरामिक की जानकारी दी। यह अस्थि प्रतिस्थापक के रूप में सबसे अधिक प्रयुक्त होता है क्योंकि इसकी मुड़ने की सामर्थ, टूटने के प्रति कठोरता तथा यंग नियतांक सबसे अधिक है। कोकूबो तथा उसके साथियों ने एक ऐसा द्रव भी तैयार किया जिसके गुण हमारे शरीर के द्रव के समान हैं जिसकी मदद से हम यह स्थापित कर सकते हैं कि अमुक पदार्थ जैवीय है अथवा नहीं। लगभग 20-30 वर्ष पूर्व से ही सघन हाइड्रॉक्सी एफाटाइट का शरीर में रोपण जैसे अनुप्रयोग में प्रचलन शुरू हुआ। कैल्सियम फॉस्फेट का एक जो सबसे महत्वपूर्ण एवं अभिनव उपयोग सामने आया वह है नितंब (hip) के लिए प्रस्तिस्थापक पर प्लाज्मा स्प्रे द्वारा लेपन। 1980-90 के दौरान बोन्फील्ड तथा उसके साथियों ने कैल्सियम फॉस्फेट को पॉलीमर की मैट्रिक्स के साथ तैयार संश्लिष्ट को फिलर पदार्थ के रूप में अत्यंत उपयोगी पाया। संश्लिष्ट के कारण हाड्रॉक्सी एपाटाइट में अधिक मजबूती आयी।

*** छपते छपते पता चला है कि प्रोफेसर लैंजर को मिलेनियम टैक्नोलॉजी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।**

दंत विज्ञान एवं चिकित्सा में दो प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता होती है ; (1) रोपण यानि चिकित्सा के लिए कृत्रिम अंगों की पूर्ति (प्रोस्थेसिस) संबंधी जरूरत तथा (2) दांतों की पुनर्प्राप्ति हेतु जरूरत। पहले प्रकार के पदार्थों को दंत चिकित्सक कृत्रिम दांतों को बनाने तथा शल्य चिकित्सक अंग रोपण (इंप्लांट) के लिए काम में लाते हैं। दांतों के दंत मूल भरने (रूट फिलिंग) या दंत इंप्लांट इसी श्रेणी में आते हैं। इसी प्रकार मानव दवा के क्षेत्र में ये पदार्थ अस्थि रोग, सिर तथा गर्दन की सर्जरी (शल्य चिकित्सा) में काम आते हैं। दूसरे वर्ग में आने वालों जैव पदार्थों में वे पदार्थ आते हैं जिन्हें दांतों की पुनर्प्राप्ति के लिए प्रयोग में लाते हैं। इन्हें शरीर में (दांतों के जबड़ों में) प्रत्यारोपित नहीं किया जाता है। इनका उपयोग प्राकृतिक दांतों की पुनर्प्राप्ति के लिए होता है। खासतौर से दांतों के क्राउन, ब्रिज, जड़ायी (पच्ची), वीनियर (पृष्ठावरण) परत में होता है। अंग रोपण हेतु पदार्थों का जैव सक्रिय होना परमावश्यक है। यानी इन कांच-सिरामिकों में जैव सक्रिय हाइड्रॉक्सी कार्बोनेट एपाटाइट परत होनी चाहिए जिससे ये शरीर में हड्डी तथा नरम ऊत्तकों (soft tissues) के साथ बंधित हो सकें। इनके विपरीत पुनर्प्राप्ति से संबंधित अनुप्रयोग में जैवानुकूलता सबसे अहम् होती है। फॉस्फेट आधारित कांच का चिकित्सीय कार्यों में उपयोग किया जाता है। एक महत्त्वपूर्ण अनुप्रयोग में कांच के माइक्रो गोलकों (20-30 माइक्रॉन) में रेडियो सक्रिय Y - 90 मिला कर दवा को कैंसर प्रभावित क्षेत्र में पहुंचाने में उपयोग किया जाता है । इससे कैंसर प्रभावित अंग (भाग) जैसे लीवर पर विकिरण की उपयुक्त मात्रा (डोज़)दी जाती है ।

जैव-सिरामिकों की लोकप्रियता बढ़ने के साथ-साथ अनुसंधान एवं विकास की दिशा ऊ त्तक इंजीनियरी की ओर बढ़ रही है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा उपचार के लिए कोशिकाओं को विशेष उपयोगी ढांचों (Scaffold) की मदद से शरीर के अंदर यथावश्यक जगह पर पहुँचाया जाता है। अभी तक बोन ग्राफ्टिंग के लिए अस्थि पदार्थ अलग शल्य चिकित्सा द्वारा शरीर के दूसरे भाग से निकाला जाता है। चूंकि ऐसे प्राकृतिक पदार्थ की काफी कमी रहती है अत: नये अस्थि पदार्थों को कृत्रिम रू प से तैयार किये जाने की दिशा में कई काम हो रहे हैं। साथ ही रोपण के लिए उपयोग में लाए जा रहे पदार्थों की सतहों को इस तरह संशोधित किये जा रहे हैं ताकि वे शरीर के अंदर पूर्णत: समाहित हो जांय। हालांकि जैवीय-कांच एवं-सिरामिक ने मानव स्वास्थ में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए हैं, परंतु यदि संपूर्णता की दृष्टि से देखते हैं तो लगता है कि ये अभी भी परिमाण एवं गुणता में प्राकृतिक पदार्थ की तुलना में पीछे ही हैं। अत: आने वाले वर्षों में वर्तमान जैव-कांच तथा-सिरामिकों की यांत्रिक प्रबलता को बढ़ाना, जीन-सक्रियण के लिए उच्च जैव सक्रियता वाले पदार्थ, लेपित पदार्थों की प्रबलता, जैव सक्रिय स्मार्ट पदार्थ जिन्हें संसूचन में प्रयोग किया जा सके, बेहतर जैवानुकरणशील संश्लिष्ट बनाने की आवश्यकता है। हमारे जीवन को स्वस्थ एवं अच्छा बनाने की दिशा में ये सराहनीय प्रयास होंगे।

प्रस्तुत अंक वर्ष 2007 का अंतिम तथा 2008 का प्रथम अंक का सयुंक्तांक है । इस अंक में पूर्ववत् लेख टिपण्णियों के साथ विज्ञान कथा तथा कविताओं का समावेश किया गया है। डॉ. होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2007) का परिणाम घोषित कर दिया गया है जिसकी जानकारी इस अंक में अन्यत्र दी गयी है । कृपया अपना सक्रिय योगदान पूर्ववत बनाये रखें ।

– डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

अतिक्रांतिक द्रव

डॉ. प्रदीप कुमार

रेडियो विश्लेषणकी अनुभाग, रेडियो रसायनिकी व समस्थानिक वर्ग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400 085.

पदार्थ को शुद्ध अवस्था में प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त विधियों में निरंतर शोध होते आए हैं । इस कार्य के लिए पृथक्करण तथा शोधन विधियाँ काफी महत्त्व की हैं । इसी प्रकार अतिक्रांतिक द्रव विधि नवीनतम विधियों में से एक है । इसमें एक विशेष क्रांतिक तापमान एवं दबाव पर पदार्थ एक ऐसी प्रावस्था में आ जाता है जो न गैस है और न ही तरल। इस अवस्था की एक विशेषता यह है कि इसकी विलीन क्षमता को तापमान एवं दबाव के बदलाव के साथ परिवर्तित किया जा सकता है जिसका लाभ कार्बनिक एवं धातुओं के निष्कर्षण से लेकर कण निर्माण, उत्प्रेरक, इलेक्ट्रॉनिक चिप निर्माण, शुष्क सफाई तक के कई क्षेत्रों में मिल रहा है । इस लेख में अतिक्रांतिक द्रव के कुछ इन पहलुओं पर संक्षेप में जानकारी दी गयी है ।

रसायन शास्त्र में, पृथक्करण तथा शोधन का विशेष महत्व है । किसी पदार्थ को शुद्ध अवस्था में प्राप्त करना अति चुनौती पूर्ण कार्य है । पृथक्करण तथा शोधन की जीव विज्ञान के क्षेत्र में भी काफी सार्थकता है जैसे कि एंजाइम, प्रोटीन इत्यादि का पृथक्करण । प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थों को पृथक करने में इस विधि की महत्वपूर्ण भूमिका है । पृथक्करण के लिए उपयोग में लायी जाने वाली पारंपारिक विधि, विलायक-निष्कर्षण विधि है । इस विधि में पदार्थ का विलीनीकरण किया जाता है । एक प्रकार से यह विनाशकारी विधि है, इसमें पदार्थ पूर्णत: नष्ट हो जाता है । इस विधि का एक और दोष यह भी है कि इसमें अवांछनीय तरल अपशिष्ट उपोत्पाद के रूप में पैदा होते हैं । जहां विषैले पदार्थ हों या रेडियोसक्रिय तत्त्व हों, तरल अपशिष्ट का कम मात्रा में उत्पादन नितांत आवश्यक है। विगत वर्षों में, अतिक्रांतिकारी द्रव, विशेषत: तरल अपशिष्ट की न्यूनतम उत्पत्ति संभाव्यता के कारण, विलायक निष्कर्षण विधि के विकल्प के रूप में उभरे हैं। इसके अलावा विलायक निष्कर्षण विधि की अपेक्षा इस विधि द्वारा निष्कर्षण शीघ्रता से संपन्न होता है। अतिक्रांतिक द्रव ठोस पदार्थों के भीतर गहराई तक पहुंच कर पदार्थों का निष्कर्षण करते हैं। इसके अलावा आव्यूह नष्ट भी नहीं होती। अतिक्रांतिक द्रव न्यून श्यानता, उच्च घनत्व, न्यून पृष्ठ तनाव तथा उत्तम निसरण गुणों के कारण तीव्रतर तथा स्वच्छ विधि मानी जा रही है। न्यून श्यानता तथा न्यून पृष्ठ तनाव के कारण अतिक्रांतिक द्रव, आव्यूह के भीतर गहराई तक पहुंच कर पदार्थों का निष्कर्षण करने में सक्षम है। अतिक्रांतिक द्रवों में तरल पदार्थों की तरह विलीन करने के गुण तथा गैस की तरह निसरण गुणों के चलते कम समय में उच्च क्षमता का निष्कर्षण संभव है।

अतिक्रांतिक द्रव क्या होते हैं? साधारणत: अगर किसी गैस को दबाव द्वारा संपीडित किया जाय तो वह तरल अवस्था में परिवर्तित हो जाती है। लेकिन एक निश्चित तापमान के पश्चात कितना भी दबाव डाला जाय, गैस को तरल अवस्था में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इस तापमान को क्रांतिक तापमान तथा वाष्प दबाब को क्रांतिक दबाब से जाना जाता है। इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है क्रांतिक बिंदु से पूर्व पदार्थ दो अवस्थाओं में विद्यमान रहता है। तत्पश्चात एकाकी अवस्था में आ जाता है। यह पदार्थ की विशेष अवस्था है। चित्र -1 में इसे रेखाओं द्वारा दर्शाया गया है। वांडरवाल ने इस विशेष अवस्था को निरंतरता की अवस्था कहा है। सामान्य रसायनिकी के नियम इस पर लागू नहीं होते। सुविधा के लिए कुछ वैज्ञानिक ने इसे विस्तरित तरल व कइयों ने संपीडित गैस का प्रारूप मान कर सिद्धांत विकसित करने के सराहनीय प्रयास किए हैं। लेकिन इस प्रकार के प्रारूप की परिकल्पना से वास्तविकता का आंशिक अनुमान ही संभव है, क्योंकि अतिक्रांतिक द्रव न तो गैस की श्रेणी में आते हैं, न ही तरल श्रेणी के अंतर्गत। यह एक विशेष अवस्था है जिसमें दोनों अवस्थाएं एकाकी अवस्था में विलीन हो जाती हैं । इसमें दोनों अवस्थाओं के गुण मौजूद होते हैं। वर्तमान युग सूचना तंत्र का युग है। कंप्यूटर का विकास रासायनिकी के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ है। कंप्यूटर पलक झपकते ही करोड़ों गणनाएं कर सकता है । इसका वैज्ञानिकों ने भरपूर फायदा उठाया है। अणु स्तर पर अतिक्रांतिक द्रवों को समझना संभव हो पाया है। इन द्रवों का जो चित्र सामने आया है, उसका वर्णन विस्तार से किसी अन्य लेख में करना उचित होगा। इस लेख को अतिक्रांतिक द्रवों की उपयोगिता तक ही सीमित रखा गया है।

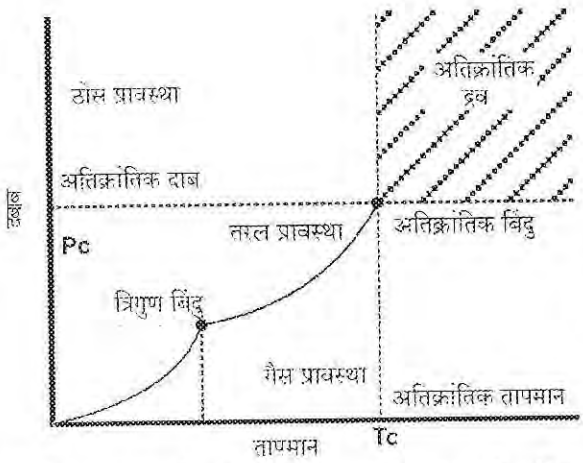

चित्र – 1 एक पदार्थ का दबाव – तापमान प्रावस्था रेखाचित्र

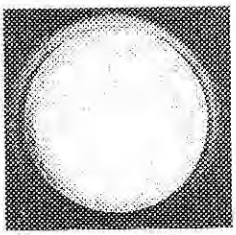

चित्र– 2 (ब): CO_2 की अतिक्रांतिक प्रावस्था

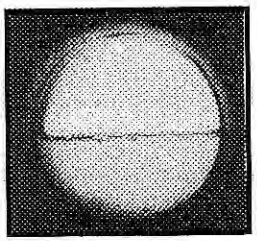

चित्र– 2 (अ): CO_2 की तरल और गैस प्रावस्थाएं

जैसा कि तालिका–1 से स्पष्ट है कि अतिक्रांतिक द्रवों के गुणों का मान तरल व गैस के बीच है । रसायन शास्त्र की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण गुण, तरल की तरह पदार्थों को विलीन करने का है। इस अवस्था का एक और विशेष अभिलक्षण यह है कि विलीन क्षमता में दबाव और तापमान के बदलाव द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है। विलीन क्षमता में परिवर्तन दबाव तथा तापमान द्वारा अतिक्रांतिक द्रव घनत्व में बदलाव किये जा सकने के कारण संभव है। तालिका–2 में विभिन्न पदार्थों के अतिक्रांतिक बिंदुओं को सूची बद्ध किया गया है। तालिका–2 पर दृष्टिपात से विदित होता है कि CO_2 का अतिक्रांतिक बिंदु सामान्य है तथा दस दबाव व तापमान को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है । इसके अलावा CO_2 अविषालु, रसायनिक रूप से अक्रिय, पर्यावरण सहायक एवं अज्वलनशील है तथा आसानी से उपलब्ध व पुनश्चक्रणित की जा सकती है। अत: मुख्य रूप से CO_2 अतिक्रांतिक द्रव के रूप में प्रयोग की जाती है।

तालिका –1 विभिन्न प्रावस्थाओं के भौतिक गुणों की तुलना

प्रावस्था	घनत्व ग्रा./घनसेमी.	श्यनता पॉयज	विसरणशीलता सेमी.$^{-2}$ सें $^{-1}$
गैस	10^{-3}	(0.5-3.5)* $^{-4}$	0.01-1.0
अतिक्रांतिक द्रव	0.2-0.9	(0.2-1.0)* 10^{-3}	(3.3-0.1)* 10^{-4}
तरल	0.9-1.0	(0.3-2.4)*10^{-2}	(0.5-2)*10^{-5}

तालिका – 2, अतिक्रांतिक द्रवों के लिए प्रयुक्त कुछ प्रमुख विलायकों के क्रांतिक दबाव, तापमान तथा घनत्व

द्रव	क्रांतिक तापमान Tc (° सें.)	क्रांतिक दबाव Pc (वातावरण)	क्रांतिक घनत्व ग्रा./घनसेमी.	घनत्व 400 वातावरण दाब पर ग्रा./घनसेमी.
CO_2	31.3	72.9	0.47	0.96
N_2O	36.5	72.5	0.45	0.94
NH_3	132.5	112.5	0.24	0.40
n-C_5	196.6	33.3	0.23	0.51
H_5O	374.2	217.6	0.28	--
SF_6	45.5	37.1	0.74	1.61
Xe	16.6	58.4	1.10	2.30
CCl_2F_2	111.8	40.7	0.56	1.12
CHF_3	25.9	46.9	0.52	--

अगर अणु स्तर पर चर्चा करें तो सभी अणुओं की गतिज एवं स्थितिज ऊर्जा होती है। गतिज ऊर्जा का संबंध अणुओं की गति से होता है तथा स्थितिज ऊर्जा अणुओं के परस्पर आकर्षण बल का परिणाम है । इस आकर्षण बल को वांडर बल के नाम से जाना जाता है। विलेय–विलायक बीच वांडर बल विलीनीकरण प्रक्रिया को प्रभावित करता है। इस बल की वजह से अणु परस्पर चिपके रहते हैं तथा पृष्ठ तनाव, श्यनता, धीमा निसरण का कारण भी यही बल है। ये गुण विलीनशीलता, पृथक्करण में बाधक हैं। क्रांतिक तापमान से अधिक तापमान पर अणुओं की गतिज ऊर्जा स्थितिज ऊर्जा के प्रभाव पर हावी हो जाती है। अणु एक दूसरे से चिपकते नहीं हैं। फलस्वरूप पृष्ठ तनाव और श्यनता में कमी आ जाती है तथा निसरण दर में वृद्धि होती है।

हैनरी और गौर्थ ने 1879 में सर्वप्रथम अतिक्रांतिक द्रव के विलीनशीलता के गुण का पता लगाया। लवलौक ने, 1958 में अतिक्रांतिक द्रवों का क्रोमैटोग्राफी में गतिशील प्रावस्था

के तौर पर उपयोग करने का प्रस्ताव सुझाया। वर्ष 1962 में, कलैसपर ने निकल पौरफरिन का क्रोमैटोग्राफिक पृथक्करण, अतिक्रांतिक कलोरोफ्लोरोमीथेन का गतिशील प्रावस्था के तौर पर प्रयोग करके संपन्न किया । तत्पश्चात प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थों के पृथक्करण व निष्कर्षण के लिए अतिक्रांतिक द्रवों के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। इसके अतिरिक्त अतिक्रांतिक द्रवों के अन्य बहुत से उपयोग हैं। लेकिन सबसे अहम् बात यह है कि जहां अतिक्रांतिक द्रवों का प्रयोग किया जाता है, वहाँ पर दबाव और तापमान द्वारा प्रक्रिया पर नियंत्रण किया जा सकता है तथा प्रक्रिया को इच्छानुसार दिशा दी जा सकती है व मनचाहे परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थों तथा धातुओं का निष्कर्षण

अतिक्रांतिक द्रव निष्कर्षण का उपयोग प्राकृतिक पदार्थों को ठोस व तरल आव्यूह से निष्कर्षित करने के लिए किया जाता है । कुछ विशिष्ट उदाहरण हैं, जैसे कि चाय व काफी का विकैफिकरण, मसालों का निष्कर्षण, तेल और वसा का विगंधीकरण, वनस्पति तेलों का बीजों और दानों से निष्कर्षण, वनस्पति दवाइयों का निष्कर्षण, फलों के रस का स्थिरीकरण, ऊन से लैनोलिन निकालना, फास्ट खाद्य पदार्थों से तेल पृथक्करण अण्डे तथा पशु कोशिकाओं से कॉलेस्ट्रॉल अलग करना, पेड़ पौधों से एंटिऑक्सीडैंट निकालना, पैस्टीसाइड निष्कर्षण , तंबाकू से निकोटीन निकालना इत्यादि ।

लेकिन कई वर्षों तक धातु आयन पृथक्करण के लिए इस विधि का उपयोग नहीं किया सका क्योंकि अतिक्रांतिक CO_2 का धातु आयनों के साथ किसी प्रकार की अंत: प्रक्रिया नहीं होती है। इसका पहला कारण यह है की CO_2 अध्रुवीय (non-polar) है तथा ध्रुवीय (polar) धातु आयनों के साथ इसकी विलय-विलायक अंत:प्रक्रिया अति क्षीण है। तथा दूसरा कारण आवेश उदासीनता की आवश्यकता है।

अतिक्रांतिक CO_2 द्वारा धातु आयनों के निष्कर्षण के लिए एक युक्ति सोची गई कि यदि धातु आयन का किसी पदार्थ के साथ संकुल बनाया जो संभवत: वह अतिक्रांतिक CO_2 में विलीन हो सकता है। इस परिकल्पना को हकीकत में तबदील करने का श्रेय 'वाई' को जाता है, उन्होंने तांबे का, अतिक्रांतिक CO_2 द्वारा निष्कर्षण करके दिखलाया । तत्पश्चात एक के बाद एक अन्य कई धातुओं का निष्कर्षण किया गया। नाभिकीय क्षेत्र में तो इस तकनीक का विशेष महत्व है क्योंकि अपशिष्ट में रेडियोसक्रिय तत्त्वों की उपस्थिति वैज्ञानिकों के लिए सिरदर्द बनी हुई है। रेडियोसक्रिय अपशिष्ट का निपटान आज भी एक चुनौतीपूर्ण समस्या है। इस तकनीक द्वारा रेडियोसक्रिय अपशिष्ट की मात्रा में कमी होने पर, काफी हद तक रेडियोसक्रिय अपशिष्ट निपटान की समस्या से निपटा जा सकता है। लघु स्तर पर यूरेनियम, प्लूटोनियम व थोरियम का निष्कर्षण भी किया जा चुका है।

अतिक्रांतिक द्रव क्रोमैटोग्राफी :

इसमें अतिक्रांतिक CO_2 को गतिशील प्रावस्था के तौर पर उपयोग किया जाता है। इसकी पृथक्करण दर HPLC और गैस क्रोमैटोग्राफी के बीच है। उच्च तापमान पर विघटित होने वाले जिन पदार्थों का पृथक्करण गैस क्रोमैटोग्राफी से नहीं किया जा सकता, उनका अतिक्रांतिक द्रव क्रोमैटोग्राफी से सुगमतापूर्वक किया सकता है। इसी प्रकार उच्च अणु भार वाले अवाष्पशील पदार्थों जिनका HPLC से पृथक्करण मुश्किल से होता है। अतिक्रांतिक द्रव क्रोमैटोग्राफी द्वारा शीघ्र व बेहतर विभेदन से किया जा सकता है।

कण निर्माण :

अतिक्रांतिक द्रव का उपयोग चूर्ण या सूक्ष्म कण बनाने में होता है जिनका फार्मा उद्योग में बखूबी इस्तेमाल किया जाता है। पारंपरिक विधिओं में चूर्ण के अभिलक्षणों जैसे कि कण आमाप पर किसी तरह का नियंत्रण नहीं रहता। जबकि अतिक्रांतिक द्रव के उपयोग से मनचाहे आमाप के सूक्ष्म दवाई कणों को उत्पन्न कर विकृत्य में अन्त:स्थापित किया जाता है। इस विधि द्वारा निर्मित शुष्क इन्हेलर (inhaler) अस्थमा वालों के लिए विशेष लाभदायक है।

उत्प्रेरक/क्रिय माध्यम :

अतिक्रांतिक द्रवों का क्रिय माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता है।अति चनित पदार्थ के संश्लेषण में इनकी उपयोगिता है। अब वैज्ञानिकों को पदार्थ संश्लेषण के क्षेत्र में एक और विकल्प मिल गया है। अतिक्रांतिक द्रव्यों के प्रयोग से क्रिय दर पर मनचाहा नियंत्रण पाया जा सकता है। यह मनचाहा नियंत्रण दबाव में बदलाव द्वारा संभव है। इस विधि द्वारा किसी विशेष पदार्थ का संश्लेषण किया जा सकता है, जोकि सामान्य पद्धति द्वारा संभव नहीं होता।

इलेक्ट्रॉनिक चिप निर्माण :

औद्योगिक स्तर पर अतिक्रांतिक द्रव्यों का उपयोग इलेक्ट्रॉनिक चिप निर्माण के लिए किया जा सकता है। इलेक्ट्रॉनिक चिप निर्माण पर्यावरण को अनावश्यक बोझिल करता है। एक अनुमान के अनुसार 2 ग्राम चिप बनाने में कम से कम 72 ग्राम रसायन, 1.6 किलोग्राम ईंधन की खपत तथा 32 लीटर

शेष भाग पृष्ठ 33 पर....

हमारी धरती और प्रलय : अतीत, वर्तमान तथा भविष्य

डॉ. अवधेश शर्मा

वैज्ञानिक

केंद्रीय खनन् एवं ईंधन अनुसंधान संस्थान, बिलासपुर इकाई,
बिलासपुर (छ.ग.) – 495 001.

प्रलय एक ऐसा शब्द है जिसके अर्थ से सभी लोग परिचित हैं। इस शब्द का उल्लेख सभी धार्मिक ग्रंथों में किया गया है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार प्रलय होने पर समूची धरती जल या हिम से आच्छादित हो जाती है, फलस्वरूप समस्त जीवधारियों का नाश हो जाता है। इस घटना के लाखों वर्ष बाद पुन: जीवों का प्रादुर्भाव होता है और इस तरह धरती फिर से पहले की तरह हो जाती है। इन्हीं कुछ पहलुओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से इस लेख में चर्चा की गयी है ।

इस धार्मिक मान्यता को हम यदि विज्ञान की नजर से देखें तो एक स्पष्ट दृश्य हमारे सामने आता है। यदि ऐसा कुछ हो जिससे पृथ्वी का तापमान कुछ ही डिग्री बढ़ जाये या कम हो जाये तो धरती पर स्थित समूची बर्फ या तो पिघलकर जल प्लावन का रूप ले लेगी या विद्यमान समस्त जल बर्फ के रूप में बदल जायेगा। ये दोनों स्थितियां प्रलय शब्द को ही सार्थक करेगी। ये स्थितियां क्या कभी पहले बनी हैं ? या आगे चलकर बन सकती है ? इसको जानने के लिए हमें धरती के इतिहास को समझना होगा।

भू वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों से सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव इसकी उत्पत्ति के लाखों वर्ष बाद हुआ है। पृथ्वी के भौमिकीय इतिहास को देखने से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक युग में विभिन्न जीवों का प्रादुर्भाव हुआ है और उनकी समाप्ति भी हुयी है।

अब हमें यह देखना है कि धरती कैसे बनी तथा अपने वर्तमान स्वरूप में कैसे विकसित हुई। इस बीच किन-किन मुख्य संरचनात्मक एवं पुन: समायोजन प्रक्रियाओं से गुजरी। किन-किन जीवों का प्रादुर्भाव हुआ और कौन-कौन से जीवों का समूल नाश हो गया। धरती एवं उसके उपग्रह चंद्रमा की संभावित समाप्ति कैसे होगी ?

पृथ्वी की उत्पत्ति एवं महाद्वीपों का जन्म

हमारी धरती एक ब्रह्मांडीय पिंड के रूप में पाँच हजार करोड़ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आयी। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस पर जीवन का प्रारंभ उसके जन्म के 1500 करोड़ वर्ष बाद हुआ। जीवाश्मों की खोज एवं अध्ययन के बाद इस धारणा की पुष्टि हो चुकी है। भू-वैज्ञनिकों ने पृथ्वी के पूरे जीवन को समय चक्रों में विभाजित किया है। सर्वप्रथम पाँच बड़े भागों में बाँटा गया है जिसे कल्प कहते है। प्रत्येक कल्प को पुन: युग में व्यवस्थित किया गया है तथा युग को पुन: उप-विभागों में रख गया है। इन सबका कुल समय भी निर्धारित किया गया है (चित्र 1) ।

पृथ्वी के जन्म के करोड़ों वर्ष बाद उस पर एक महा-भूखंड का जन्म हुआ जिसे वैज्ञानिकों ने पैंजिया नाम दिया। इस भू-खंड पर छोटे-छोटे आंतरिक सागरों का विस्तार था। पैंजिया के चारों ओर एक विशाल जल भाग था, जिसे 'पैथालासा' कहा गया है। लगभग 275 करोड़ वर्ष पूर्व यानी गिरी युग के प्रारंभ में हर्सीनियन हलचल के फलस्वरुप इस महा-भूखंड में एक दरार उत्पन्न हो गयी और फिर इसके उत्पन्न होने के 165 करोड़ वर्ष बाद अर्थात् आज से 110 करोड वर्ष पूर्व, खटीमय युग के अंत में जब अल्पाइन क्रम के पर्वतों का निर्माण हुआ, तो भीषण भू-हलचल से यह भू-खंड दो भागों में टूट गया। उत्तरी भाग को लारेंशिया या अंगारालैंड तथा दक्षिणी भाग को गोंडवानालैंड कहा गया। वर्तमान में स्थित अफ्रीका, भारत, दक्षिणी अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, अंटार्कटिका आदि गोंडवानालैंड के भाग थे जब कि अंगारालैंड में उत्तरी अमरीका, कनाडा, इंग्लैंड, फ्रांस, पोलैंड आदि देश थे। भू-खंड के टूटने से बने बीच जगह में 'टेथिस समुद्र' का जन्म हुआ। निश्चय ही मत्स्य युग के प्रारंभ में जब कैलिडोनियन क्रम के पर्वतों का सृजन हुआ, उसी समय (410-445 करोड़ वर्ष के मध्य) महा-भूखंड कमजोर हो चुका था फलत : हर्सीनियन हलचल के समय इसमें दरार का आसानी से जन्म हो गया।

कल्प	युग		अवधि (करोड़ वर्ष)	समय (करोड़ वर्ष)	जलवायु	गतिविधियां	जीवों का प्रकार
नूतन (सिनोजोइक)	तुरीय	अभिनव प्राति नूतन	01	01	उष्ण-आर्द्र शीत		मनुष्य का प्रगटीकरण
	तृतीयक	अति नूतन	7	8	तृतीय हिमयुग		स्तनपाई जीवों की बहुलता तथा
		मध्य नूतन	17	25	उष्ण-आर्द्र		आधुनिक समुद्रीय
		आदि नूतन	13	38	↑	ज्वालामुखी हलचल	जीवों का उद्भव
		प्राादि नूतन	16	54			
		पुरा नूतन	11	65	उष्ण-आर्द्र		पुष्पीय-पौधों की बहुलता
मध्य (मेसोजोइक)		खटीमय	75	140	उष्ण	अल्पाइन क्रम के पर्वतों का सृजन (रॉकीज, एडीज, काकेशस, आल्पस, एटलस, हिमालय)	भीमकाय सरीसृपों की समाप्ति
		महासरट	60	200	उष्ण-आर्द्र		प्रथम पक्षी का उद्भव
		रक्ताश्म	40	240	शुष्क	ज्वालामुखी एवं हलचल	जल-थल जीवों की बहुलता
पुरा (पेल्यो-जोइक)		गिरि	50	290	आर्द्र	हर्सीनियन हलचल से पर्वतों का सृजन	त्रिखंड जीवों की समाप्ति
		अंगार	60	350	उष्ण-आर्द्र	होब्री घाटी, वेल्स, कार्नवाल, यूराल)	प्रथम सरीसृप का प्रगटीकरण
		मत्स्य	60	410	द्वितीय हिमयुग उष्ण-आर्द्र	कैलिडोनियन क्रम के पर्वतों का सृजन	अपुष्पीय पौधों की बहुलता
		प्रवालादि	35	445	उष्ण-आर्द्र	(अल्पेशियन,	
		अवर-प्रवालादि	60	505	आर्द्र	ब्रजीलाइड्स, अरावली,	
		त्रिखंड	100	605	प्रथम हिमयुग आर्द्र	महादेव, सतपुड़ा)	त्रिखंड जीवों की बहुलता
सुपुरा (प्रोटेरोजोइक)		त्रिखंड-पूर्व	?	2500	उष्ण	त्रिखंड पूर्व पर्वतों का सृजन (लारेंशियन, एलगोमन, किलानियन)	मुलायम शरीर के जीव एवं पौधों की बहुलता
अजीविक (एजोइक)		आद्य	?	3600	उष्ण	ज्वालामुखी हलचल	जीव-विहीन
पृथ्वी की उत्पत्ति				4500	चंद्रमा का जन्म		

अभिनव	उत्तर-हिमानी	2000 BC	लौह युग
		3500	कांस्य युग
		8000	नव-पाषाण
पांचवे हिमायन की समाप्ति		15000 वर्ष	
		20000	मध्य पाषाण
अपर प्राति नूतन	पांचवा हिमायन	30000	अपर पुरा-पाषाण
मध्य प्राति नूतन	चौथा हिमायन	150000	
	तीसरा हिमायन	300000	निम्न पुरा-पाषाण
	दूसरा हिमायन	500000	
निम्न प्राति नूतन	प्रथम हिमायन	1000000	आदि पुरा पाषाण

तृतीय हिमयुग की विभिन्न अवस्थायें

चित्र-1 : पृथ्वी- अतीत एवं वर्तमान

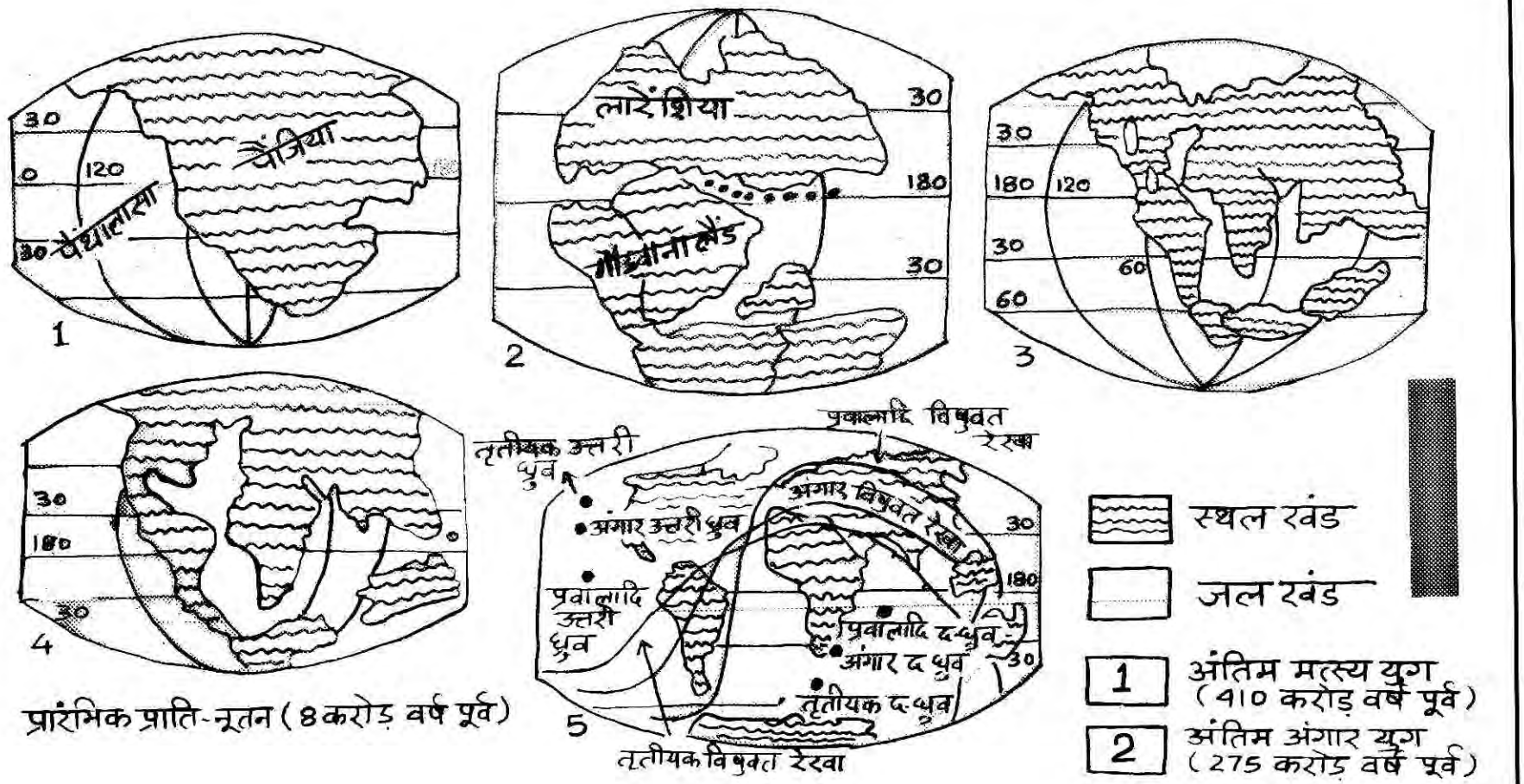

चित्र-2. पृथ्वी की विभिन्न स्थितियां

महासरट् युग में गोंडवानालैंड भी विभंजित हो गया तथा ज्वारीय बल के कारण प्रायद्वीप भारत, मेडागास्कर, ऑस्ट्रेलिया, आफ्रीका, दक्षिणी अमरीका, अंटार्कटिका आदि गोडवानालैंड से अलग होकर विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हो गये। भारत के उत्तर की ओर प्रवाहित होने के कारण हिंद महासागर तथा अमरीका के पश्चिम की ओर प्रवाहित होने के कारण प्रशांत महासागर का जन्म हुआ। पैंथालासा पर कई दिशाओं से महाद्वीपों के प्रहार के कारण उसका आकार क्रमश: संकुचित होता गया तथा अंत में अवशिष्ट भाग प्रशांत महासागर बना। इस प्रकार स्थल एवं जल भाग का वर्तमान स्वरूप अति-नूतन युग तक पूर्ण हो गया।

इन घटनाओं के दौरान दोनों ध्रुवों एवं भू-मध्य रेखा की स्थितियों में भी काफी परिवर्तन हुए। प्रवालादि युग में भू-मध्य रेखा सर्वाधिक उत्तर में था तथा वर्तमान नार्वे के उत्तर से होकर गुजरता था जबकि तृतीयक युग में वर्तमान अल्पाइन पर्वतीय क्षेत्र से गुजरता था। विभिन्न युगों में ध्रुवों के स्थानांतरण को नीचे तथा चित्र-2 में स्पष्ट किया गया है।

युग	उत्तरी ध्रुव	दक्षिणी ध्रुव
तृतीयक	51^0 उत्तर अक्षांश 153^0 पश्चिमदेशांतर	आफ्रीका के दक्षिण 53^0 दक्षिण अक्षांश के पास
अंगार	16^0 उत्तर अक्षांश 147^0 पश्चिम देशांतर	नैटाल में डर्बन के पास
प्रवालादि	14^0 उत्तर अक्षांश 124^0 पश्चिम देशांतर	मेडागास्कर के उत्तर-पूर्व में

पृथ्वी के वर्तमान समय को परिक्रमण युग का नाम दिया गया है। इस तरह के समय में पृथ्वी के धरातल में संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं। पृथ्वी के इतिहास से ज्ञात होता है कि इस तरह के परिक्रमण पहले हुए हैं। हिमालय, आल्प्स एवं एकीज पर्वत श्रेणियां आज से 140 करोड़ वर्ष पहले बनी हैं। इनके निर्माण के समय बहुत ही भीषण प्राकृतिक गतिविधियाँ मसलन हिमालयन, भूकंप एवं ज्वालामुखीय उद्गार की घटनाएं हुई थी।

हिम-युग : इतिहास, अभिलेख एवं कारण :

रेखित एवं प्रसीती रोड़ी का गंडमृद के साथ पृथ्वी पर मिलना यह सिद्ध करता है कि हिमायन के कई युग आये हैं। प्रथम हिमयुग त्रिखंड एवं प्रवालादि युग के मध्य आया था। इस लम्बे युग में अनेक हिमायन के साक्ष्य मिले हैं। प्रवालादि के नीचे स्थित चट्टानों में हिम अवसादों का निक्षेप अनेक स्थानों से प्राप्त हुआ है। ये गंडमृद पांच सौ करोड़ वर्ष से भी प्राचीन है तथा कनाडा, नार्वे, ऑस्ट्रेलिया तथा भारत में फैले हुए हैं। चौंकाने वाली बात यह है कि ये हिम मलबा वहाँ भी मिले हैं जो अब सम-शीतोष्ण तथा उष्ण-कटिबंध जलवायु में स्थित हैं। दूसरा हिम-युग पुरा-कल्प के अंतिम भाग अर्थात अंगार-गिरी में आया था। उस समय अर्थात चार सौ करोड़ वर्ष पूर्व हिमानी दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया तथा भारत के अनेक भागों को घेरे हुए था। यह वही समय था जब उपरोक्त तीनों दक्षिण अमरीका एवं अंटार्कटिका के साथ जुड़े थे तथा गोंडवानालैंड के रूप में स्थापित थे।

हम नूतन कल्प के अभिनव युग में रह रहे हैं जो आज से दस लाख पहले प्रारंभ हुआ था। इस युग में तृतीय हिमायन एक करोड़ वर्ष पहले प्रारंभ हुआ था। इसमें पाँच हिमानी अवस्थाएं तथा चार अन्तर-हिमानी अवस्थाएं रही हैं। इसके समस्त चरणों में सभी स्थल एवं सागरीय भाग सदैव हिम चादर के नीचे नहीं थे। इसमें कई बार हिमावरण का विस्तार हुआ तथा अनेक बार निवर्तन। इस काल में समस्त भू-पटल का 1/5 भाग हिमचादर से प्रभावित था जिसमें उत्तरी अमरीका, ग्रीनलैंड, उत्तरी यूरोप, उत्तरी साइबेरिया, अंटार्कटिका तथा विश्व के ऊँचे पर्वत सम्मिलित थे। प्रति-नूतन हिम चादर का अंतिम निवर्तन आज से लगभग पच्चीस हजार वर्ष पूर्व प्रारंभ हो गया था। यह निवर्तन सोलह हजार वर्षों तक चलता रहा तथा आज से लगभग नौ हजार वर्ष पहले अंतिम हिमचादर का पूर्णतया निवर्तन हो गया था। प्राति-नूतन के इसी हिमायन में मनुष्य धरती पर प्रकट हुआ। हिमायन की अवस्था एवं समय चित्र -1 में दर्शाया गया है।

हिम-युगों के समय का निर्धारण एक जटिल समस्या है। पृथ्वी के दोनों ध्रुवीय क्षेत्र ऊष्मीय रूप से एक दूसरे से अलग हैं। दक्षिणी ध्रुव जहाँ एक महाद्वीप के ऊपर स्थित है वही उत्तरी ध्रुव एक समुद्रीय द्रोणी (बेसिन) है। गिरी युग में जब महाद्वीपों का संतरण प्रारंभ हुआ उसके ठीक पहले ऑस्ट्रेलिया तथा अंटार्कटिका बर्फ की चादर से ढके हुए थे।

हिमयुग क्यों तथा कैसे आता है- इन कारणों के बारे में अनेक वैज्ञानिकों ने विचार व्यक्त किये हैं पर कोई भी विचार सर्वमान्य नहीं हो सका है। लेकिन आज से साठ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध भौतिकविद् मिलनकोविच ने इस संबंध में जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था उसे 'मिलनकोविच मॉडल' के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण एवं विकास संस्थान ने स्वीकृत कर लिया है। इस मॉडल के अनुसार पृथ्वी की कक्षीय परिक्रमा में तीन

तरह के चक्र परिलक्षित होते हैं। पहला, चूकी पृथ्वी का परिक्रमा पथ गोलाकार तथा उनेन्द्रीय है अत: गोलाकार पथ के समय ऋतुओं में थोड़ा ही अन्तर आता है जबकि उनेन्द्रीय पथ के समय सर्वाधिक। यह चक्र एक लाख वर्ष पर आता है जब पृथ्वी सूर्य से अधिकतम दूरी पर रहती है। दूसरा चक्र चालीस हजार वर्ष पर आता है जब पृथ्वी के अपने अक्ष पर झुकाव तीन डिग्री बढ़ जाता है। कम झुकाव सूर्य के प्रकाश एवं ताप का पृथ्वी पर अधिकाधिक फैलाव सुनिश्चित करता है। तीसरा, पृथ्वी के परिक्रमा पथ का वलयाकार होना है। यह चक्र बीस हजार वर्ष में आता है जिससे ग्रीष्म और शीत के सौर ताप में काफी अंतर आ जाता है। कभी-कभी ये सभी चक्र मिलकर पृथ्वी को गरम कर देते है और कभी -कभी धरती को हिम युग में ला खड़ा करते हैं।

हिम युग समाप्त नहीं हुआ है। वर्तमान में संपूर्ण अंटार्कटिका, ध्रुव प्रदेश एवं ग्रीनलैंड बर्फ की मोटी चादर से ढके हुए हैं। पृथ्वी का आज लगभग 58,64,370 वर्ग मील क्षेत्र बर्फ से आवृत है।

मिलनकोविच मॉडल के आधार पर, धरती पर आये हिम युगों में बर्फ की चादरों के फैलने तथा वापस लौटने (निवर्तन) की घटनाओं का अध्ययन कर वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है कि वर्तमान अन्तर-हिमानी काल को समाप्त होने में अभी दस हजार वर्ष शेष है। मॉडल के अनुसार वर्तमान समय ठंडा-ग्रीष्म का है। परंतु जब दस हजार वर्ष बाद ठंडा-शीत का आगमन होगा तब नये हिमानी बनने प्रारंभ हो जायेंगे। उस समय अर्थात दस एवं नब्बे हजार वर्ष बाद पृथ्वी का अधिकांश भाग हिम से ढक जायेगा। उत्तरी-अमरीका का एक बड़ा हिस्सा तथा पूरा यूरोप हिम चादर के नीचे होगा। यूरोप में यह हिम चादर स्कैंडिया पठार से नीचे उतर आयेगा तथा ओसलो, कोपेनहेगन तथा लंदन तक पहुँच जायेगा। अमरीका में पूरा कनाडा हिम के नीचे होगा तथा हिम चादर बोस्टन तथा शिकागो तक पहुँच जायेगा। दक्षिणी ध्रुव का भी यही हाल होगा। और यदि ध्रुवों की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ (जैसा कि पहले हो चुका है) तो भू-मध्य रेखीय देश भी हिम चादर के अन्दर होंगे। इस तरह ये हिम चादरें चारों तरफ से मैदानों को ढककर जानवरों का भोजन समाप्त कर देंगे- वे जीवित नहीं रह पायेंगे और फिर धीरे-धीरे सभी जीवधारी पृथ्वी के साथ ही बर्फ में दब जायेंगे।

चंद्रमा और सूर्य का भाग्य :

आने वाले हजारों वर्षों में धरती पर होने वाली घटनाओं की चर्चा के दौरान यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि पृथ्वी का अपने उपग्रह चंद्रमा से कैसा संबंध रहेगा। वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि पृथ्वी का जन्म से लगभग 500 वर्षों के बाद चंद्रमा इससे अलग हुआ था। ऐसा माना जाता है कि प्रशांत महासागर ही वह स्थान है जहाँ से चंद्रमा पृथ्वी से अलग हुआ। उस समय दिन आज के चौबीस घंटों की जगह मात्र चार घंटों का ही था। चंद्रमा क्रमश: पृथ्वी से दूर होता गया है। यदि यह मान ले कि जिस समय चंद्रमा, धरती से अलग हुआ उस समय पृथ्वी और चंद्रम के बीच की दूरी शून्य किमी. थी तो आज वह दूरी अड़तीस लाख पचास हजार किमी. हो गयी है। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि आज से बीस हजार करोड़ वर्ष बाद चंद्रमा पृथ्वी से अधिकतम दूरी पर चला जायेगा तब पृथ्वी पर दिन 1128 घंटों का होगा।

लेकिन चंद्रमा बहुत दिनों तक इतनी दूरी पर नहीं रह पायेगा। सौर ज्वार के कारण पृथ्वी की अपने अक्ष पर भ्रमण करने की गति मंद हो जायेगी। फलत: चंद्रमा पृथ्वी की ओर आने लगेगा और वह ज्योंही पृथ्वी की बाह्य परिधि में पहुँचेगा तब पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण उसे अपनी ओर खींच लेगी। परिणाम यह होगा कि चंद्रमा के अवशेष खगोलीय वलय के रूप में पृथ्वी की परिक्रमा करने लगेंगे।

वैज्ञानिकों ने यह भी अनुमान लगाया है कि सूर्य में भी विस्मयकारी परिवर्तन होगा। अगले दस हजार करोड़ वर्षों में सूर्य के सतह का तापमान भयानक रूप से बढ़ जायेगा जिससे पूरी धरती जलविहीन हो जायेगी और फिर सूर्य एक भयानक विस्फोट के साथ समाप्त हो जायेगा। विस्फोट के उपरांत सृजित ऊर्जा के कारण पूरे सौर परिवार का नाश हो जायेगा, पृथ्वी सहित सभी ग्रह अंतरिक्ष में विलीन हो जायेंगे।

फिर क्या होगा? क्या एक और सौर परिवार का जन्म होगा? क्या फिर एक और पृथ्वी बनेगी ? क्या फिर जीवन की सृष्टि होगी? विज्ञान का उत्तर संभावनाओं के सकारात्मक पहलू में है और यही उत्तर वैदिक अवधारणाओं से भी परिलक्षित होता है।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र द्वारा अंटार्कटिका का पर्यावरणीय अध्ययन

टी. वी. रामचंद्रन एवं ए.वी. साठे

पर्यावरणीय मूल्यांकन प्रभाग, विकिरण संरक्षा प्रणाली प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र , मुंबई - 400 085.

अंटार्कटिका महाद्वीप को इसकी सुदूरता एवं प्रतिबंधित मानव गतिविधियों के कारण सभी पर्यावरणीय एवं प्रदूषण अध्ययन के लिए संदर्भ के रूप में लिया जा सकता है। प्राकृतिक रेडियोसक्रियता, मिट्टी, पानी और जैविक प्रतिदर्शों (सैंपल्स) में भारी धातुओं की साँद्रता पर पृष्ठभौमिक अधारभूत आँकड़े जमा करने के उद्देश्य से भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने अंटार्कटिका की ग्रीष्मकालीनं खोजयात्रा में भाग लिया। प्रतिदर्शों से विकिरण सक्रियता तथा भारी धातुओं की साँद्रता पर एक उपयोगी डाटाबेस तैयार किया गया है। प्रस्फुरक सर्वेक्षण मापक (सिंटिलेटर सर्वे मीटर) तथा ताप प्रदीप्ति मात्रामापी(टीएलडी) का उपयोग कर पृष्ठभौमिक गामा विकिरण स्तरों को भी मापा गया। ठोसावस्था नाभिकीय पथ संसूचक अधारित मात्रामापी (सॉलिड स्टेट न्यूक्लियर ट्रैक डिटेक्टर बेस्ड डोजीमीटर) का उपयोग कर अंतरंग (इनडोर) हवा में रेडॉन साँद्रता मापी गयी। धनायन व ऋणायन साँद्रता भी मापी गयी। प्रतिदर्शों में विकिरण सक्रियता एवं भारी धातु साँद्रता संबंधित भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र द्वारा प्राप्त आधारभूत आँकड़ों का उपयोग मानव गतिविधियों से मुक्त दूरस्थ पर्यावरण में विकिरण सक्रियता तथा शोध धातु साँद्रता संदर्भ पदार्थ की तरह किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में इस अध्ययन संबंधी जानकारी दी गयी है ।

अंटार्कटिका महाद्वीप दुनिया के सबसे दक्षिणी भाग में है जिसका 98% से भी ज्यादा भाग करीब 2 किलोमीटर मोटी बर्फ की परत सें ढ़का हुआ है। मानव गतिविधियों से मुक्त यह स्थल प्राकृतिक घटनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु नैसर्गिक प्रयोगशाला व वेधशाला है। इसके चारों तरफ समुद्रों में अत्यधिक जैव उपलब्धता तथा इसके भू-भाग व महाद्वीपीय तहों में अधिक मात्रा में हाइड्रोकार्बन तथा अन्य खनिज पदार्थों के जमाव की संभावना के कारण यह महाद्वीप पूरे विश्व का ध्यान आकर्षित कर रहा है। इस महासागर एवं सुदूर स्थल पर दुनिया भर के विभिन्न देशों द्वारा प्राकृतिक विकिरण सक्रियता स्तर तथा भारी धातुओं की साँद्रता के आकलन के लिए अनेकों माप लिए जा चुके है। हिंद महासागर तथा अंटार्कटिका महाद्वीप पर पृष्ठभौमिक आधारभूत आँकड़े प्राप्त करने के लिए 1989 - 91 के दौरान आठवीं , नौंवी एवं दसवीं ग्रीष्मकालीन अंटार्कटिका खोज यात्रा में हवा, पानी, मिट्टी और जैविक प्रतिदर्शों के व्यापक जाँच की शुरुआत की जा चुकी है और प्राप्त परिणामों का सारांश इस लेख में प्रस्तुत है।

भारतीय अंटार्कटिका केंद्र, मैत्री शिरमार मरूद्वीप में स्थित है। यह पूर्वी अंटार्कटिका चार्नोटिक प्रदेशों के सबसे बड़े दानेदार बिल्लौरी तहखाने में है। यह क्षेत्र गिंडवाना भूतल अनुक्रमों में है। मरूद्वीप 2.5 किलोमीटर चौड़ा, करीब 20 किलोमीटर लंबा, ठोस तल चट्टान का आमाप करीब 3.5 वर्ग किलोमीटर है तथा ऊँचाई औसतन 100 मीटर है।

प्रतिचयन (सैंपलिंग) व मापन विधि :

प्रतिचयन व मापन विधियाँ भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में अनुसरित मानकीकृत प्रलोव पर आधारित है। पर्यावरण में प्राकृतिक रेडियो सक्रियता स्तर मापने के लिए भा. प. अ. केंद्र द्वारा विकसित प्रणालियों का उपयोग किया गया। वायुमंडल में रेडॉन के कारण प्राकृतिक रेडियो सक्रियता जानने हेतु यात्रामार्ग से ही माप लिए गये और अरब सागर व हिंद महासागर के एक साथ अंटार्कटिका के आस-पास के क्षेत्रों में विद्यमान रेडॉन की मात्रा हेतु अंटार्कटिका महाद्वीप में माप लिये गये। अनुसंधान पोत के फ्रंट फौक्सिल पर स्थापित एक 450 लीटर प्रति मिनट के उच्चायतन प्रतिदर्शित (सैंपलर)का उपयोग कर एक निश्चित समय के लिए 5 इंच व्यास के (रेडॉन डाउटर्स के लिए 100% संग्रहण दक्षता) काँच तंतुक निस्यंदक - पत्र (ग्लास फाइबर फिल्टर पेपर्स)पर (लगभग 2 घंटे) वायु- तत्त्वों का संग्रहण किया गया। 35% दक्षता तथा 0.45 सीपीएम पृष्ठभौमिक ZnS (Ag) गणक का उपयोग कर संग्रहित निस्यंदक - पत्र प्रतिदर्शो का इनकी कुल अल्फा-सक्रियता हेतु गणना की गयी। संग्रहण समय, प्रवाह दर, गणन क्षमता और संग्रहण को ध्यान रखते हुए कुल अल्फा गणन दरों से रेडॉन -स्तर का आकलन किया गया। प्रतिचयन के कारण लगभग ± 25% है। सामान्यत: वायुमंडलीय विकिरण सक्रियता स्तर तथा भारी धातु प्रदूषक साँद्रता सामान्यत: कम पायी गयी, जबकि अंटार्कटिका में प्रयोगशाला के पास तथा उन भू-भागीय क्षेत्रों के पास जहाँ मानव गतिविधियाँ अधिक है, साँद्रता अधिक पायी गयी। अंटार्कटिका में तहीय जलों के जैविक समृद्धि का अध्ययन पादप व जंतु प्लवक (फाइटोप्लाँक्टन और झूप्लाँक्टन) प्रतिदर्शों के संदर्भ और विविधता द्वारा किया गया।

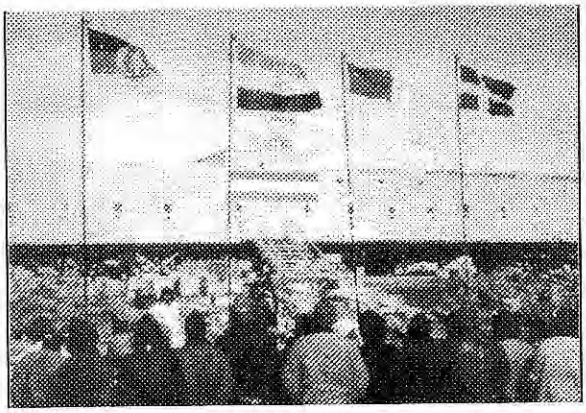

चित्र - 1 मैत्री में भारतीय स्टेशन

अंतरंग रेडॉन स्तर का माप ठोसावस्था नाभिकीय पथ संसूचक (एसएसएनटीडीएस) द्वारा लिया गया। माप निश्चेष्ट संसूचक तकनीक द्वारा माप लिया गया। इसमें मैत्री के आस-पास के निवासियों के चारों तरफ 2.5 सेंमी. X 2.5 सेंमी. आमाप के स्वदेशी नाभिकीय पथ संसूचक के धात्विक महीन पत्तरों की छोटी पट्टियों को 67 दिनों तक खुला रखा गया। उद्भासन अवधि के पश्चात, संसूचकों को 60^0 सें. तापमान पर 10% कॉस्टिक (NaOH) के रासायनिक घोल में 90 मिनट तक धोया गया तथा स्पार्क काऊन्टर का उपयोग कर अभिलेखित पथों के कुल संख्या का क्रमवीक्षण (स्कैन) किया गया । बी. ए. आर. सी. में अंशीकरण किये गये प्रयोग से प्राप्त संवेदशीलता गुणांक का उपयोग कर अनुमानित पथ घनत्वों को साँद्रता में परिवर्तित किया गया।

धनायन व ऋणायन साँद्रता मापी गयी। वायुमंडलीय आयन निम्न एवं उच्च वायुमंडल के रासायनिक एवं विद्युतीय घटनाओं में अहम भूमिका अदा करते हैं। समुद्र के ऊपर विज्वरी (ऐटकेन) नाभिकों की साँद्रता जीवन-काल तथा महाद्वीपीय क्षेत्रों से प्रदूषण के प्रवाह की तस्वीर प्रस्तुत करती है। विज्वरी नाभिकों की साँद्रता का आकलन एक छोटे से कण-गणक द्वारा किया गया, जो " विल्सन बादल - कक्ष " पर काम करता है । यह तंत्र के आकार से बडे 1 एन. एम. के विज्वरी नाभिकों की साँद्रता तक मापता है। धनायन व ऋणायन स्तर 134 ए. मेडिकांन, लंदन प्रकार के एक वायुमंडलीय विश्लेषक द्वारा मापे गये। यह प्रणाली एक विस्तृत साँद्रता - परास, 200 से 10^7 एएन प्रति घनमीटर के बीच 1 एन.एम. से ज्यादा आमाप के विज्वरी नाभिकों को मापता है।

पृष्ठभौमिक गामा विकिरण जानने हेतु लगभग 350^0 सेंटीग्रेड पर गर्म किये गये नये ऊष्मा प्रदीप्ति मात्रामापी (टीएलडीज) काम में लाये गये।

समुद्री पर्यावरण में भारी धातुओं की साँद्रता हेतु अंटार्कटिका के यात्रा मार्ग से ही समय-समय पर हवा और समुद्री जल के प्रतिदर्श जमा किये गये। हवा के प्रतिदर्श ह्वाटमैन ईपीएम-2000 निस्यंदक-पत्र द्वारा अनुसंधान पोत के फ्रंट फौक्सिल से 100 लीटर प्रति मिनट की दर से खींच कर जमा किये गये ताकि क्वथित्र तथा पाक-गृह निर्मुक्त वाह्य संदूषण से बचा जा सके। प्रत्येक प्रतिदर्श को 24 घंटा तक रखा गया जैसा कि समुद्री पर्यावरण में भारी धातुओं की साँद्रता शहरी पर्यावरण की तुलना में काफी कम होंगे।

इस तरह जमा किये गये वायु, समुद्री व ताजे जल के प्रतिदर्शों को नाइट्रिक, हाइड्रोक्लोरिक और परक्लोरिक अम्लों का उपयोग कर अम्ल-सार-ग्रहण (एसिड डाइजेशन) विधि द्वारा विघटित किया गया।

वोल्टमितीय मापन प्रिंसटन अनुप्रयुक्त अनुसंधान 174 ए पालोग्राफिक विश्लेषक का उपयोग कर तथा वोल्टामोग्राम का अभिलेखन पीएआर एक्स-वाई अभिलेखक द्वारा किया गया। पीएआरसी - 305 विडोलक के साथ स्टैटिक मरकरी ड्राप इलेक्ट्रोड एसेम्बली का उपयोग किया गया। मापों की विश्वसनीयता तथा पुनरुत्पादकता की जाँच मानक संदर्भ द्रव्यों के द्वारा किया गया तथा परिणाम प्रमाणित मान के $\pm$ 1-2 % अंदर पाया गया।

अलग-अलग समयांतराल पर महासागर से प्राप्त जल प्रतिदर्शों से ट्रिशियम विश्लेषण भी किये गये। विद्युत - विश्लेषण का उपयोग कर जमा किये गये प्रतिदर्शों में ट्रिशियम की मात्रा जानने हेतु इनका आसवन व संघनन किया गया। संघनित प्रतिदर्शों को अंतिम बूँद तक स्रावित किया गया तथा मेसर्स पैकार्ड द्वारा विपणित इंस्टागर्ल काक्टेल की गिनती और उपयोग करते हुए अतिशय निम्नस्तर द्रव स्फुलिंग मापक में विश्लेषित किया गया।

1. वायुमंडल में प्राकृतिक रेडियोसक्रियता का स्तर:

अंटार्कटिका मार्ग के वायुमंडल में रेडॉन और इसके के मापन हेतु 5 इंच व्यास के काँच तंतुक निस्यंदक-पत्र (रेडॉन संतति के लिए 100% संग्रहणा दक्षता) एक 450 लीटर प्रति खान के उच्चायतन प्रतिदर्शित (सैंपलर) का उपयोग कर एक निश्चित समय के लिए (करीब 120 मिनट) वायु - तत्त्वों का संग्रहण किया गया। 35% दक्षता तथा 0.45 सीपीएम पृष्ठभूमि वाले एक ZnS (Ag) गणक का उपयोग कर संग्रहित निस्यंदन-पत्र प्रतिदर्शों के इनकी कुल अल्फा-सक्रियता हेतु गणना की गयी। संग्रहण दक्षता, संग्रहण समय, प्रवाह दर, और संग्रहण

अवधि को ध्यान में रखते हुए कुल अल्फा गणन दरों से रेडॉन-स्तर का आकलन किया गया। इन निस्यंदक प्रतिदर्शों को एक साथ एकत्रित किया गया और गामा वर्णक्रममापी का उपयोग कर ^{7}Be. ऐहिक विकिरण (कॉस्मिक रेडियोन्यूक्लियाइड) नाभिक ^{137}Cs, एक पतित (फाल आउट) नाभिक का विश्लेषिण किया गया।

अंतरंग रेडॉन का मापन निश्चेष्ट संसूचक तकनीक का उपयोग कर किया गया इसमें शामिल हैं : स्वदेशी नाभिकीय पथ संसूचक धात्विक महीन पत्तर की छोटी पट्टी को 70 दिनों तक नाग्रावस्था में खुला रखना।

2. प्राकृतिक पृष्ठभौमिक विकिरण स्तर:

अंटार्कटिका महाद्वीप में प्राकृतिक पृष्ठभौमिक विकिरण मात्रा जानने के लिए विकिरण स्तर माप, एक स्वदेशी प्रस्फुरन सर्वेक्षण मापक के उपयोग द्वारा किया गया जिसका निष्पादन -12^{0} सेंटीग्रेड निम्न तापमान पर जाँचा गया था।

3. मैत्री के आस-पास की मिट्टी में यूरेनियम की मात्रा

मैत्री से जमा की गयी मिट्टी के प्रतिदर्शों में यूरेनियम की मात्रा का आकलन विखंडन पथ तकनीक का उपयोग कर किया गया।

4. समुद्री पर्यावरण में भारी धातुओं का स्तर :

दक्षिणी ध्रुव की तरह सुदूर स्थान पर भारी धातुओं की साँद्रता जानने के लिए हवा, पानी, तलछट, ताजा पानी, झील व तुषार जैसे प्रतिदर्शों के माप लिये गये । अंटार्कटिका के यात्रामार्ग से ही समय-समय पर हवा और पानी के प्रतिदर्श इकट्ठा किये गये । हवा के प्रतिदर्श ह्वाटमैन ईपीएम-2000 निस्यंदक- पत्र द्वारा 100 लीटर प्रति मिनट प्रवाह की दर से 24 घंटे तक खींच कर जमा किये गये जैसा कि यदि इस सुदूर स्थल पर भारी धातुओं की साँद्रता शहरी पर्यावरण की तुलना में काफी कम होंगे। प्रिंसटन अनुप्रयुक्त अनुसंधान 174-ए ध्रुवीय ग्राफ विश्लेषक का उपयोग कर आयनिक विश्लेषण किया गया।

5. वायुमंडलीय आयन एवं कण साँद्रता :

धन व ऋण आयन तथा कण साँद्रता वायुमंडलीय आयन विश्लेषक और विज्वरी (ऐटकेन) नाभिक गणक द्वारा मापा गये। माप प्रतिदिन 2 घंटा के अंतराल पर लिये गये।

6. मीथेन माप:

हाइड्रोकार्बन माप के लिए स्टनलेस निर्वात बल्ब में वायु जमा किया गया तथा गैस क्रोमाटोग्राफिक द्वारा विश्लेषण किया गया।

7. काटाबैटिक हवा और तुषार कण की माप:

काटाबैटिक हवा और तुषार का प्रभाव जानने के लिए, खोज यात्रा के दौरान प्रतिदिन 2 घंटा के अंतराल पर कण साँद्रता तथा मौसम विज्ञान संबंधी प्राचल (मौसम संबंधी प्राचलों के माप लिये गये।

8. समुद्री पर्यावरण में ट्रिशियम माप :

समुद्री जल तथा ताजा जल में ट्रिशियम स्तर का आँकडा प्राप्त करने के लिए अंटार्कटिका में तथा अंटार्कटिका के यात्रामार्ग से ही समुद्री जल के प्रतिदर्श जमा किये गये। प्रतिदर्श पॉलीथीन के एक-एक लीटर क्षमता की वाताप्रवेश निषिद्ध बोतलों में जमा किये गये तथा उपचारोपरांत ट्रिशियम मात्रा हेतु अतिशय निम्नस्तर द्रव प्रस्फुरन वर्णक्रममापी द्वारा 20 घंटों तक गणना की गयी।

9. अंटार्कटिक प्रतिदर्शों में प्रकाश रासायनिक घटक:

झील तल तृण, झीलों से फफूँदी (लाइकेन) व स्पंज प्रतिदर्श जमा किये गये और वसीय अम्ल तथा स्टेरॉल मात्रा जानने हेतु इनका विश्लेषण किया गया।

10. बायोटिक प्रतिदर्शों में रेडियोसक्रियता स्तर:

गामा वर्णक्रममापी तकनीक का उपयोग कर मैत्री के चारों तरफ फफूँदी और काई (मास) के प्रतिदर्शों में विकिरण सक्रियता की मात्रा मापी गयी।

11. प्लवक विश्लेषण:

मैत्री झील से प्लवकों को 0.164 से एक सेंटीमीटर आमाप के छेदों वाली,चालने योग्य रेशमी कपड़ा संख्या - 20 (बोल्टिंग सिल्क क्लाथ नंबर - 20) के एक शंक्वाकार जाल की सहायता से जमा किया गया।

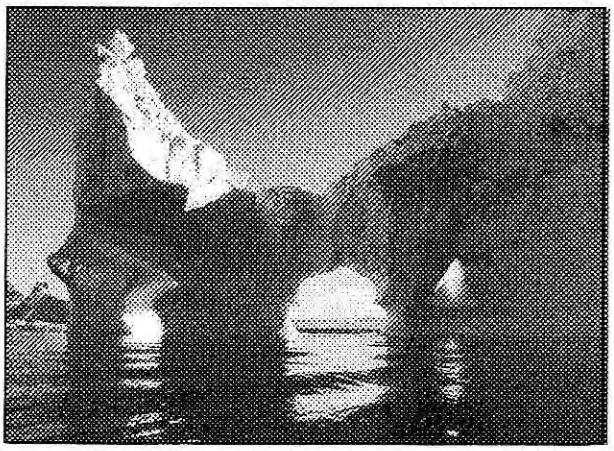

चित्र - 2 आईसबर्ग का मनोरम दृश्य

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र द्वारा अंटार्कटिका के ग्रीष्मकालीन खोज यात्रा के दौरान पर्यावरणीय प्रतिदर्शों के मापों से प्राप्त परिणाम दक्षिणी हिंद महासागर और अंटार्कटिक महाद्वीप के हवा, पानी और अन्य पर्यावरणीय प्रतिदर्शों के विभिन्न जैबों में विद्यमान प्राकृतिक विकिरण सक्रियता तथा भारी धातु साँद्रता से संबंधित विश्वसनीय डाटाबेस प्रस्तुत करते हैं। काई, फफूँदी आदि जैसे अंटार्कटिका प्रतिदर्शों में प्रकाश रासायनिक घटक और विभिन्न प्रकार के पादप व जंतु प्लवकों का पता लगा लिया गया है। अंटार्कटिका में तथा अंटार्कटिका यात्रा मार्ग में जमा किये गये सभी प्रकार के प्रतिदर्शों के व्यापक प्रतिचयन तथा विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचा गया हैं :

1. रेडॉन (^{222}Rn) के कारण प्राकृतिक रेडियोसक्रियता स्तर, गोवा (मुख्य भूमि) में 2.22 बैक्वरल प्रति घन मीटर से घटते हुए भूमध्य-रेखा पर 0.061 बैक्वरल प्रति घन मीटर तथा दक्षिण की तरफ 0.027 बैक्वरल प्रति घन मीटर पायी गयी। भारतीय अंटार्कटिका केंद्र मैत्री में, औसत साँद्रता 0.027 बैक्वरल प्रति घन मीटर पायी गयी। 0^0 और दक्षिणी ध्रुव के बीच प्रेक्षित अति निम्नस्तर मुख्यत: हवा को समुद्र से चलकर दक्षिणी ध्रुव तक पहुँचने में लगे समय तथा लम्बे पथ के कारण है। यह दक्षिण-पूर्व व्यवसाय को भूमध्य के नीचे तथा पश्चिमी हवा को 40^0 दक्षिण मुड़ने के कारण भी हो सकता है। वायुमंडल में तथा दक्षिण ध्रुव में ^{222}Rn बजट का मूल्यांकन करते समय इस निम्न साँद्रता पर विचार किया जाना चाहिए। विभिन्न देशों द्वारा अंटार्कटिका के अलग-अलग केंद्रों पर विभिन्न देशों द्वारा पाया गया स्तर 0.02 से 0.058 बैक्वरल प्रति घन मीटर है जो मैत्री में प्रेक्षित स्तर के लगभग बराबर है।

2. हिंद महासागर के पास तथा अंटार्कटिका पर्यावरण में ^{7}Be सौर्यजनित (कॉस्मोजेनिक) रेडियोन्यूक्लियाइड स्तर 15^0 N : 73^0 E - 18^0 S : 58^0 E पर 9.81 बैक्वरल प्रति घन मीटर से मैत्री में 2.26 है जबकि स्थानों पर ^{137}Cs, पतित (फॉलाउट) रेडियोन्यूक्लियाइड 0.01 से 0.042 बैक्वरल प्रति 1000 घन मीटर के बीच पाया गया।

3. स्वदेशी ठोसावस्था नाभिकीय पथ संसूचक (एसएसएनटीडीएस) का उपयोग अंतरंग ^{222}Rn स्तर का मापन शीतकालीन एवं कैम्पों के लिए किया गया। शीतकाल के दौरान यह स्तर 21 बैक्वरल तथा ग्रीष्मकाल के दौरान 1.7 बैक्वरल पाया गया।

4. प्राकृतिक पृष्ठभौमिक विकिरण स्तर कंटेनर प्रयोगशाला में 3.8 माइक्रोराँजन/घंटा तक पोत बोर्ड के केबिन में 8.3 माईक्रोराँजन/घंटा (1.0 से 10.0 माइक्रोराँजन/घंटा) के बीच पाया गया।

5. मैत्री के पास प्राकृतिक पृष्ठभौमिक विकिरण स्तर हैदराबाद झोपड़ी के अंदर 13.2 माइक्रोराँजन/घंटा (10 से16 माइक्रोराँजन/घंटा) था जबकि मैत्री के पास बाह्य पर्यावरण में 12.4 माइक्रोराँजन/घंटा (10 से 15 माइक्रारॉन/घंटा) खुले बर्फ परत पर प्राकृतिक पृष्ठभौमिक विकिरण स्तर 4.6 माइक्रोराँजन / घंटा (3.6-8 माइक्रोराँजन / घंटा) पाया गया।

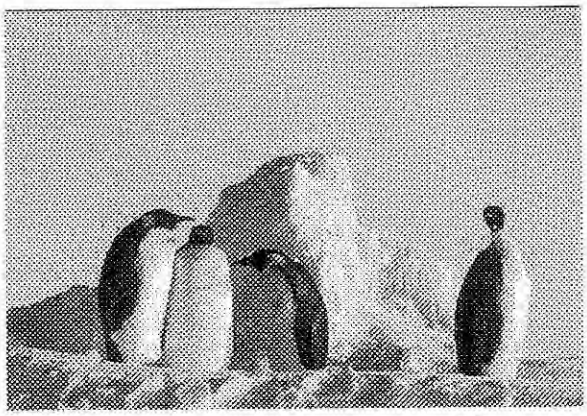

चित्र - 3 आइसबर्ग पर बैठे कुछ पेंग्विन

6. टीएलडी द्वारा मापी गयी वाह्य गामा पृष्ठभौमिक विकिरण स्तर का औसतन मान 3.8 माइक्रोराँजन / घंटा है जो समुद्र तल पर इच्छित ऐहिक (कास्मिक) विकिरण के आयन अवयवों के अनुकूल है, जहाँ किसी अन्य भौगोलिक (टेरेस्ट्रियल) स्रोत का असर न हो। पोत में मुंबई अंटार्कटिका स्थित मैत्री के बीच आते-जाते समय मापा गया औसतन विकिरण मात्रा दर 7.7 माइक्रोराँजन/घंटा पाया गया।

7. विखंडन संसूचक (फिसन ट्रैक डिटेक्टर) का उपयोग कर मैत्री के पास पर्यावरण की मिट्टी में आकलित यूरेनयिम की मात्रा 0.036 से 0.3674 पीपीएम के बीच पायी गयी, जो कि भारत में विभिन्न प्रकार के मृदा में आकलित मात्रा 1.47- 4.074 पीपीएम से काफी कम है।

8. समुद्री पर्यावरण में काँच के कारण भारी धातु साँद्रता हिंद घाटी (गोवा) में 8 नैनोग्राम/घन मीटर से पोलिनिया में 0.021 नैनोग्राम /घन मीटर; जबकि ताँबा हिंद घाटी (गोआ) में 52.3 नैनोग्राम /घन मीटर से पोलिनिया में 0.45 नैनोग्राम/ घन मीटर पाया गया । मैत्री के पास लेड की साँद्रता 0.074 नैनोग्राम/घन मीटर औसत के साथ 0.023 से 1.4 नैनोग्राम/घन मीटर के बीच रहा जबकि ताँबा 2.3 नैनोग्राम/घन मीटर औसत के साथ 0.63 से 4.23 नैनोग्राम/घन मीटर के बीच ।

9. अफ्रीकी तट और मॉरिशस के आस-पास जहाँ स्थानीय स्त्रोत अधिक प्रभावशाली घटक है के अलावा लेड, तांबा एवं जस्ता का स्तर गोवा से पोलिनिया स्थल की ओर कम होता गया।

10. मैत्री के ताजा पानी झील में भारी धातुओं कैडमियम, लेड, जस्ता, ताँबा की साँद्रता क्रमश: 0.023, 0.027,7.81 और 1.07 ग्राम / लीटर पायी गयी। बर्फ में कैडमियम, लेड और जस्ता का स्तर क्रमश: 1.25, 0.68 और 87.48 और 1.07 ग्राम / ग्राम था। अंटार्कटिका के झील में भारी धातुओं की साँद्रता समुद्री जल की तुलना में काफी कम होने की अपेक्षा की जाती है ।

11. मैत्री के पास मिट्टी के प्रतिदर्शों में कैडमियम, ताँबा, जस्ता और लेड का औसत स्तर प्रति ग्राम मृदा क्रमश: कैडमियम : 0.078 से 1.564 माइक्रोग्राम (औसत-1.564 माइक्रोग्राम), ताँबा: 0.012 से 0.035 माइक्रोग्राम (औसत 0.1 माइक्रोग्राम), जस्ता: 6.95 से 23.04 माइक्रोग्राम (औसत 11.6 माइक्रोग्राम), तथा लेड 2.81 से 43.58 माइक्रोग्राम (औसत 23.04 माइक्रोग्राम)पाया गया। ये मुबंई के मृदा स्तरों से करीब 20 गुना कम पाये गये।

12. ऐटकेन सागर की तुलना में भारतीय अंटार्कटिक केंद्र पर कण साँद्रता ज्यादा पायी गयी, नाभिकों की साँद्रता 30° दक्षिण तक दर्ज की गयी और इसके बाद यह पृष्ठभौमिक स्तर तक पहुँच गयी। यह प्रतिरूप (पैटन) दुनिया के सभी अन्वेषकों के अनुरूप ही है।

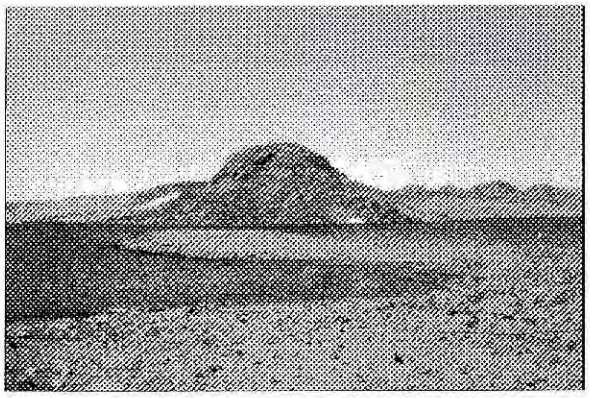

चित्र - 4 मशिरमार मरुद्वीप के पास मील का पानी

13. ऋणायन की गति धनायन से अधिक पायी गयी जो दर्शाता है कि ऋणायन क्षय धनायन की तुलना में ज्यादा है।

14. मैत्री के पास मीथेन-स्तर 0.37 से 2.4 पीपीएम के बीच पाया गया जो मुंबई के पास की तुलना में कम ह ।

15. हिंद महासागर के सतही जल में ट्रिशियम का स्तर 1 से 14 (TU) रहा। हिंद महासागर से अंटार्कटिका मार्ग में लिये गये जल प्रतिदर्शों में ट्रिशियम वितरण प्रतिरूप भूमध्य रेखा पर अधिकतम प्रतीत होता। दक्षिणी गोलार्द्ध में आकाशीय वितरण प्रतिरूप (स्पैशियल डिस्ट्रिब्यूशन पैटर्न) 40° से 60° के बीच चरम होने का संकेत देता है। 0° भूमध्य रेखा से करीब 50° दक्षिण अक्षांश तक धीरे-धीरे बढ़ता है तथा उसके बाद 60° से 70° अक्षांश तक कम होता जाता है ।

16. अंटार्कटिका झील-तल प्रतिदर्शों के पादरासायनिक घटक से पता चलता है कि संतृप्त पर असंतृप्त वसीय अम्ल प्रभावी हैं। सिर्फ स्पंज प्रतिदर्श कॉलेस्ट्रॉल की उपस्थिति दर्शाते हैं। कोई किसी अन्य वस्तु का पता नहीं चलता।

17. हिंद महासागर के जल प्रतिदर्शों में भौतिक रसायनिक प्राचल (फिजिको केमिकल पैरामीटर्स) दर्शाते हैं कि pH का मान 7.14 से 8.17 के बीच है जबकि लवणीयता 34.65 से 37.09 अंश प्रति सहस्त्रांश है। अंटार्कटिक के ताजा जल झीलों में pH मान 5.5 से 7.26 रहा है।

18. मैत्री के पास काई और फफूँदी जैसे जैविक प्रतिदर्शों में प्राकृतिक विकिरण सक्रियता स्तर से पता चलता है कियूरेनियम और थोरियम के कारण सक्रियता स्तर प्रति ग्राम (शुष्क भार) यूरेनियम : 0.016 से 0.031 बैक्वरल तथा थोरियम: 0.006 से 0.041 बैक्वरल है। पोटेशियम संसूचनीय स्तर 0.01 बैक्वरल/ग्राम से कम पाया गया।

19. पीटरमैन, हमबोल्ट और नुनाटक क्षेत्रों में अजैविक चट्टानी प्रतिदर्शों में प्राकृतिक विकिरण सक्रियता स्तर से पता चलता है कि उन क्षेत्रों में यूरेनियम श्रेणियों के कारण स्तर क्रमश: 0.032 से 1.78 बैक्वरल/ग्राम, 0.008 से 2.22 बैक्वरल/ग्राम एवं 0.009 से 0.107 बैक्वरल/ग्राम है जबकि थोरियम श्रेणियों के कारण 0.01 से 0.302 बैक्वरल/ग्राम, 0.038 से 1.75 बैक्वरल/ग्राम और औसत मान 0.47 बैक्वरल/ग्राम। इन प्रतिदर्शों में पोटेशियम स्तर 0.791 से 3.17 बैक्वरल/ग्राम (शुष्क भार) है ।

20. मैत्री के पास तलछट प्रतिदर्शों में यूरेनियम, थोरियम और पोटाशियम के कारण विकिरण सक्रियता की मात्रा क्रमश: 0.014 से 0.105 बैक्वरल/ग्राम, 0.008 से 0.102 बैक्वरल/ग्राम एवं 0.33 से 0.775 बैक्वरल/ग्राम (शुष्क भार) के बीच रहा। इन प्रतिदर्शों में प्रेक्षित स्तर सामान्य मिट्टी के करीब है।

21. पोलिनिया से प्राप्त समुद्री प्लवक में, पादपप्लवक (फाइटोप्लाँक्टन) की 29 प्रजातियाँ देखी गयी। लार्वा के

कठिनिजीव व पाकबीजकोष (लार्वल क्रस्टासिन्स और गैस्टोपाड्स) में जंतुप्लवक (जूप्लाँक्टन) बहुतायत में पाये गये। अंटार्कटिका के जल में अनेक किस्मों की उपस्थिति परत (शेल्फ) जल की समृध्दि का संकेत देते हैं।

22. मैत्री के तलछट प्रतिदर्शों में विभिन्न आर्गेनोक्लोरीन कीटकनाशकों एवं उनके हेक्साक्लोरोसाइक्लोहेक्जेंस (एचसीआर) व डीडीटी और इनके चयापचयों (डीडीई और डीडीडी) जैसे यौगिकों से पता चलता है कि कुल एचसीई : 85 से 280 पीकोग्राम /ग्राम तथा कुल डीडीटी 377 से 1250 पीकोग्राम/ग्राम के बीच था। डीडीटी और इसके चयापचयों में डीडीटी उत्पाद डीडीई ज्यादा साँद्र थे। एचसीएच के आइसोमरों में दोनों अल्फा और गामा एचसीएच एक समान प्रभावी दिखाई पड़े। डीडीटी तथा डीडीई का अनुपात 3 से 5 बीच था, जो इस सुदूर प्रदेश में इनआर्गेनो क्लोरीन्स के संभाव्य नये निवेश का संकेत देता है ।

विज्ञान कविता

समझो हो ही गया....

ए भाई...भाई, बहुत खुश लग रहा है। ... भाई, बात क्या है?
ए भाई, हुआ क्या (...2), ए भाई, बोल ना यार।
हुआ क्या,
- यूनीफार्म सिलवा ले।
ए भाई, हुआ क्या?
-सेफ्टी-शू पहन ले।
समझो हो ही गया ... बोला ना, समझो हो ही गया...
अरे समझो हो ही गया ... पांप-पपांप,
समझो हो ही गया। (... 4)

ए भाई, लिमिट्स मे काए को स्टोरी सुना रहा है? स्टार्टिंग से सुना ना।
भारी पानी को किधर से ले कर आया?
किधर मत पूछ, यह पूछ, किसमें बनाया? किसमें ?
किसमें भाई?...
- अरे भारी पानी संयंत्र में यार।
ए भाई, यत्र-तत्र सुना। सखा-मित्र सुना।
परिपत्र सुना। षडयंत्र भी सुना।...
भारी पानी संयंत्र क्या होता है ?
जिसमें भारी पानी बनाते हैं यार।
अपुन ने भारी पानी संयंत्र है लगाया।
डयूटेरियम से हमने अमोनिया मिलाया।।
अरे भाई, इतना ज़ारा अमोनिया तो था नहीं, कैसे मैनेज किया?
अरे उर्वरक का संयंत्र खोज के निकाला।
संश्लेषण से अमोनिया तब पाया।।
भाई, तुम जीनियस है। फिर क्या हुआ?
ऊँचे दाब पर हमने, गैस को था साधा।
भारी किया पानी, दूर कर के सारी बाधा।
ऐसा हो गया भाई।
अरे, समझो हो ही गया ... हाँ, समझो ...
अरे, समझो... समझो...(...4)
उसके बाद भारी पानी किधर छोड़ा भाई?
नदी में? ... **नहीं रे,**
समुंदर में?... **नहीं रे, परमाणु भट्टी-विभट्टी में।**
भट्टी-विभट्टी काए को?
विभट्टी में न्यूट्रॉन है न यार। ... तो ?
भारी पानी को उसमें, शीतलक बनाया।
फिर उसको मंदक का, रूप भी धराया।।
मंदक? मंदक से क्या हुआ?
न्यूट्रॉन से निकला विकिरण। मंदक से हुआ नियंत्रण।।
ऊर्जा ने मुझसे बोला, ए मामू वंस मोर।
अरे भाई, भाई को मामू बना डाला। फिर क्या हुआ ?
फिर झट से सबने ऐसे, मुझको गले लगाया।
अरे क्या बताऊँ रश्मि, अरे कितना मजा आया।।
ऐसा हो गया भाई।
हाँ ऽऽ समझो हो ही गया ... अरे समझो ...
अरे रश्मि समझो... (...10)
ए भाई बोल ना.. हुआ क्या... हँ... ही-ही-ही...ह-ह-हा...हाहाहा

डॉ. रश्मि वार्ष्णेय
सी-36, हैवी वाटर प्लांट, निजामपुरा,
वडोदरा -390 002.

बुढ़ापे की जीन का 'जीने' के लिए प्रोगामन संभव

विजन कुमार पाण्डेय

बड़ी बाग, लंका मैदान, गाजीपुर (उ.प्र.) - 233 001.

किसी का जन्मदिन मनाते समय आमतौर पर यह गीत गाया जाता है- "तुम जियो हजारों साल, साल के दिन हों पचास हजार"। अगर सचमुच हर आदमी इतने दिन जिये तो इस धरती का क्या होगा? क्या यह इतना बोझ उठा पायेगी? यदि ऐसा हो गया तो जरा सोचिये इतने घर, इतना भोजन, पानी, बिजली, अस्पताल आदि तमाम सुख-सुविधाएँ जुटानी होंगी कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसीलिए प्रकृति ने जीवन मरण का चक्र चुना है। ऐसा अनुमान है कि सन् २०५० तक सारी दुनिया की जनसंख्या स्थिर हो जाएगी, अर्थात जितने मरेंगे उतने ही जिएंगे। यह संतुलन विश्व की आबादी को लगभग नौ अरब पर रोक देगा। जीवन से संबंधित कुछ पहलुओं पर इस लेख में चर्चा की गयी है।

शरीरशास्त्री वैज्ञानिकों का मानना है कि जब तक शरीर के कोषाणुओं का पुनर्निर्माण ठीक-ठीक होता रहेगा, तब तक बुढ़ापा दूर रहेगा तथा शरीर युवा बना रहेगा। जब इस प्रक्रिया में विघ्न पड़ता है और कोषाणुओं के पुनर्निर्माण की गति मन्द होने लगती है, तब शरीर बुढ़ा होने लगता है। इस वैज्ञानिक विश्लेषण से एक निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि विटामिन 'ई', 'सी' और 'कोलीन' तीनों तत्त्व पर्याप्त मात्रा में प्रतिदिन शरीर को आहार के माध्यम से मिलते रहें तो शरीर के कोषाणुओं का पुनर्निमाण बदस्तूर ठीक से होता रहेगा और जब तक यह प्रक्रिया ठीक-ठाक चलती रहेगी, तब तक बुढ़ापा दूर रहेगा। बुढ़ापा आयेगा जरूर, लेकिन देर से आयेगा।

विकसित देशों में मानव की आयु-सीमा 80-82 वर्ष तक पहुँच गयी है। भारत में देश की स्वतंत्रता के समय आयु सीमा 32 वर्ष थी, जो अब 60 से ऊपर जा पहुँची है। अब भारत की जनसंख्या में लगभग 6.5 % लोग साठ से अधिक उम्र के हैं। हालत यह है कि इस तरह लगातार जिये जा रहे बुजुर्गों से तंग आकर नयी पीढ़ी ने उनसे मुंह मोड़ लिया है और कुछ सीमा तक उनको पालने की जिम्मेदारी सरकार को निभानी पड़ रही है। उन्हें जीवन निर्वाह के लिए पेंशन दी जाती है और उनके लिए जगह-जगह 'ओल्ड ऐज होम' खोले जा रहे हैं। अब भारत सरकार भी सजग हो गयी है क्योंकि संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और बढ़ते लालच ने परिवारों में बड़े-बूढ़ों के प्रति आदर और सम्मान का भाव घटाया है।

समय से पूर्व बुढ़ापा क्यों आता है ?

इस धरती पर यदि जन्म लेना सत्य है तो मरण भी उतना ही सत्य है। जन्म, विकास और पतन प्रकृति का शाश्वत नियम है। लेकिन इस संसार में कोई भी बूढ़ा नहीं होना चाहता। हर कोई मृत्यु से डरता है। यह डर भी मानव को बुढ़ापा की ओर ढकेलता है। जैसे-जैसे हमारी उम्र बढ़ती है, शरीर में अम्ल व विषाक्त पदार्थ एकत्रित होते जाते हैं। ये स्वास्थ्य के शत्रु हैं और शरीर में रोग के कीटाणुओं को जन्म देते हैं। शरीर में क्षार की अधिकता से मसूड़े फूलते हैं, जीभ सफेद होना, दाँतो से मवाद आना प्रारम्भ हो जाता है, शरीर की गतिशीलता कम होने लगती है, नाड़ियाँ सिकुड़ने लगती हैं, रक्त का बनना कम हो जाता है हमारी स्मरणशक्ति कम होने लगती है। इस प्रकार बुढ़ापे का पदार्पण होने लगता हैं।

हमारे मस्तिष्क की स्नायु-कोशिकाएँ शरीर की वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती नहीं है बल्कि ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाती है कम होती जाती हैं। जो स्नायु-कोशिकाएँ मृत हो जाती हैं उनके स्थान पर नयी कोशिकाओं का जन्म नहीं होता। साठ से अस्सी वर्ष की उम्र में लगभग एक-चौथाई स्नायु-कोशिकाएँ मृत हो जाती हैं। यही कारण है कि वृद्ध व्यक्ति अच्छी तरह सुन नहीं पाता तथा उसकी स्मरणशक्ति कम हो जाती है।

बुढ़ापे में हड्डियों पर प्रभाव :

हड्डियों में लगातार घर्षण होने के कारण, कार्टिलेज घिस जाते हैं हड्डियों के जाड़ों पर कार्टिलेज नामक सफेद मुलायम

परत चढ़ी रहती है तथा बीच में सिनोवायल नामक द्रव्य होता है इसलिए रात के समय गतिविधि न होने के कारण सुबह उठने पर हड्डियाँ जाम हो जाती हैं। ज्यादा चलने-फिरने पर जोड़ों में दर्द होता है कमर झुक जाती है।

वृद्धावस्था में मनोरोग :

जो आदमी कल की चिंता का बोझ लिए घूमता है वह अन्दर ही अन्दर खूब लड़ता है परिणामस्वरूप उसकी कोशिकाएँ समय से पूर्व ही बूढ़ी हो जाती हैं फिर उनको जवान बनाए रखने के लिए वह क्रीम व कैप्सूलों पर पैसा बर्बाद करता है। कॉस्मैटिक का सहारा लेता है क्योंकि वह जवान दिखना चाहता है। मर्ज बढ़ाकर दवा लेने से बेहतर है चेहरे की सुन्दरता को न देख मन की सुन्दरता को देखा जाये तो ऐसी नौबत ही नहीं आयेगी। इंसान का सबसे बड़ा रोग है आदतों का दास बनना और जब यही आदत लंबी चलती रहे तो पीढ़ादायक सिद्ध होती है। जो लोग समय के सांचे में अपने आप को ढ़ालकर अपने बनाये नियमों पर चलते हैं, वे न तो कभी थकते हैं और न ही बुढ़ापे को महसूस करते हैं। जब व्यक्ति अंतर देह को अपना निवास बना लेता है, तो शरीर की उम्र ढ़लने की गति धीमी हो जाती है। यदि शरीर वृद्ध होता भी है, तो भी अन्तर देह के तेज में वह बूढ़े आदमी के रूप में दिखायी नहीं देता।

बुढ़ापे से जुड़े जीन की खोज :

बुढ़ापे के लिए जिम्मेदार अनेक जीन खोजे जा चुके हैं और यह खोज आगे भी जारी है। जिरोण्टोलॉजी पिछले 4-5 दशकों में ही भरा-पूरा विज्ञान बन चुका है। एक ओर जहाँ देह के जरग्रस्त होने के शारीरिक, रासायनिक और आनुवंशिक कारण खोजे जा रहे हैं, वहीं अंगों को जराग्रस्त होने से रोकने के उपाय भी खोजे जा रहे हैं। लेकिन वह अमृत अभी विज्ञान के हाथ नहीं लगा है जिसे पीकर मनुष्य अमर हो जाए। युनिवर्सिटी ऑफ सदर्न कैलीफोर्निया के बायोमेडिकल जिरोंटोलॉजिस्ट वाल्टर लोंगो ने यीस्ट नामक कवक में दो ऐसे जीन खोजे हैं जिनमें से एक आहार को ऊर्जा में बदलने की प्रक्रिया का नियंत्रण करता है जब कि दूसरा वंशाणु इस ऊर्जा का वृद्धि और जनन में उपयोग नियंत्रित करता है। इन दोनों जीनों की क्रिया को रोक दिया जाए तो यीस्ट कोशिकाएँ इस धोखे में आ जाती हैं कि आहार की कमी हो गई है और किसी भी तरह अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए सक्रिय होना जरूरी है। इस तरह वे जहाँ सामान्य तौर पर एक हफ्ते जीवित रहती, वहीं अब जीवन-संघर्ष के चलते छः हफ्ते तक जीवित रहती है। इसका सीधा अर्थ हुआ हमारी आयु-सीमा छः गुनी बढ़ गयी। कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी के बायोमेडिकल जिरोंटोलॉजिस्ट डॉ. आत्री डीग्रे का कहना है कि एक दिन बूढ़े होने की प्रक्रिया पर पूर्णविराम अवश्य लगाया जा सकेगा। आशा है भविष्य में बीज कोशिकाएँ सभी अंगों को फिर से 'उगाने' के

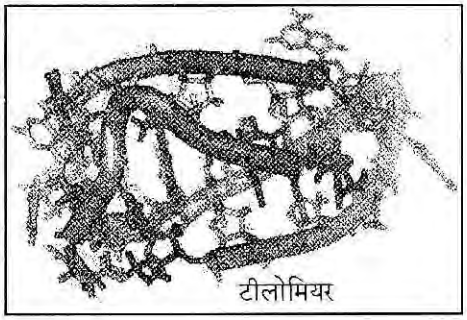
टीलोमियर

लिए इस्तेमाल होने लगेंगी और दूसरी ओर कोशिकाओं में चयापचय क्रिया से जमा हुए और शरीर को बुढ़ापे की ओर ले जाने वाले मलबे को साफ करने में सक्षम जीवाणु और नैनो रोबोट उपलब्ध हो जाएंगे। इस प्रकार कोशिकाएँ हमेशा जवान बनी रहेंगी तथा लगभग 22 अरब कोशिकाओं से बना मानव-शरीर भी हमेशा युवा बना रहेगा। न्युयार्क सिटी के अल्बर्ट आइन्स्टाइन कॉलेज ऑफ मेडीसन में डॉ. नीर बार्जिलाइ ने भी लंबी आयु से जुड़े दो जीनों (वंशाणुओं) का पता लगाया है। इनमें से एक है-एमटीपी जो मेटासोमल ट्रांसफर प्रोटीन बनाता है और दूसरा है-सीटीपी जो कोलेस्टेरॉल ट्रांसफर प्रोटीन बनाता है। डॉ. बार्जिलाइ ने एक सौ वर्ष और इससे अधिक आयु वाले 300 लोंगो का अध्ययन किया। इनकी अधिक आयु के लिए इन लोगों की आनुवंशिक रचना को ही श्रेय दिया गया क्योंकि उनके रहन-सहन में ऐसा कुछ भी नहीं था जो आम लोगों के रहन-सहन से अलग माना जा सके।

आखिर मृत्यु क्यों होती?

ऐसा लगता है जीव-जंतु 'मरने' की बजाय 'जीने' के लिए प्रोग्रामित हैं। क्योंकि कोशिकाएँ मरती हैं तो गैर-जरूरी और नष्ट-भ्रष्ट मलबे की सफाई के लिए। यदि हम एक दिन उपवास रखते हैं तो ' भूख' शरीर की रक्षाप्रणाली को बचाने की कार्यवाही प्रारंभ कर देती हैं। अर्थात जीवन-रक्षक 'सर्वाइवल' जीन तुरंत सक्रिय हो जाते हैं। नये शोध द्वारा पता चला है कि कम उम्र तक जीने वाली प्रजातियों की कोशिकाओं में तनाव सहने की और डी. एन. ए. की मरम्मत करने की अधिक क्षमता पायी गयी है। प्रशांत सागर में पायी जाने वाली सॉल्मन मछली ऐसी है कि संभोग करते ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। वैसे अमीबा तो एक तरह से अमर हैं, क्योंकि वे संतानोत्पत्ति इस तरह करते हैं कि एक से दो हो गए- एकदम एक से। अमीबा

सिकुड़ता है और फिर खट से दो भागों मे बंट जाता है। अर्थात न तो बुढ़ापा और न मौत।

असमय बुढ़ापे से कैसे बचे ?

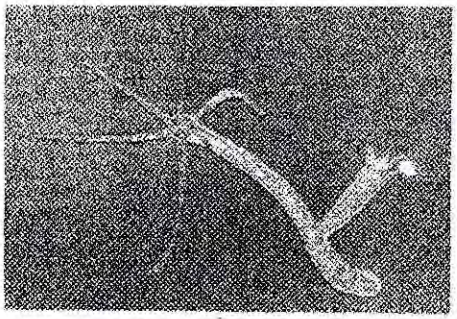

अमर जीव हाइड्रा

बुढ़ापे का अर्थ है शरीर की धमनियों का सिकुड़ कर रोग ग्रस्त हो जाना। यही कारण है कि बुढ़ापे में मानव के शरीर पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। यदि शहद में लहसुन पीसकर सुबह शाम एक महीनेतक लें तो देखेंगे कि शरीर में व्याप्त अनेकों रोग नष्ट हो जायेंगे और शरीर युवाओं जैस लगेगा।

कोलेस्ट्रॉल एक चूने जैसा पदार्थ है जो रक्तवाहिनियों में जम कर कड़ापन, जड़ता और दुर्बलता उत्पन्न करता है। इससे शरीर में स्फूर्ति नष्ट हो जाती है। इसे दूर करने का उपाय है नित्य व्यायाम, कसरत, योगासन, मालिश, शरीर को तौलिये से रगड़-रगड़ कर स्नान किया जाए तो बुढ़ापा भार के रूप शरीर को कष्ट नहीं देगा, बल्कि सुख की अनुभूति प्रदान करायेगा।

शरीर में चूने कॅल्शियम की मात्रा बुढ़ापे में बढ़ जाती है। चूना हड्डियों, स्नायुओं और रक्तवाहिनियों को कठोर बना

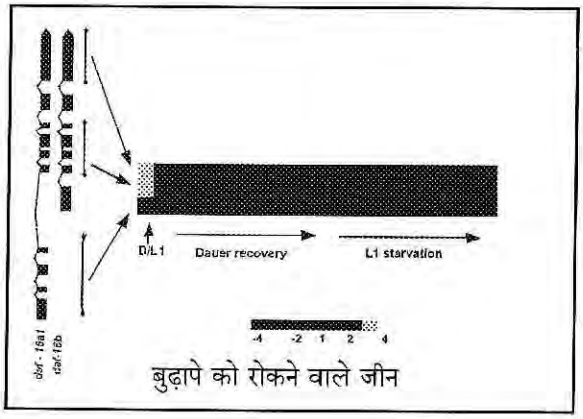

बुढ़ापे को रोकने वाले जीन

देती है। आँवले का रोज सेवन करने से यह कठोरता दूर हो जाती है, बुढ़ापे के लिए आँवला अमृत तुल्य है।

ज्यादा नमक न खायें इससे बुढ़ापा जल्दी आता है। अत: नमक से परहेज करें। मनोरोग के लिए नींद भरपूर लें। सदा सकारात्मक सोचें। जीवन को स्वर्ग समझें तथा सदा खुश रहें।

जीवन की आपाधापी, रोग-शोक, तनाव, आबोहवा, रहन-सहन, खान-पान, आदि शरीर के विविध अंगों को प्रभावित करते हैं। जैसे-जैसे बुढ़ापा घिरने लगता है, घाव भरने में ज्यादा समय लगने लगता है। शोध से पता चला है कि घाव भरने में मदद करने वाले एफ. एन. टी. प्रोटीन को बनाने वाले वंशाणु की कमी होने से एफ.एन.टी. प्रोटीन कम बनता है। वास्तव में इस वंशाणु की क्रिया को प्रेरित करने वाले प्रोटीनों की मात्रा बुढ़ापे में जिगर में कम हो जाती है। बुढ़ापा आने पर जिगर में सीरम एल्बूमिन भी कम हो जाता है। दीर्घ जीवन के लिए प्रात: पपीता खायें। भोजन के साथ दही लें, छाछ पीयें। रोजाना दूध पीने से भी आयु बढ़ती है।

विश्व के सबसे बुजुर्ग जीवित दंपत्ति - हर्बर ब्राउन और मालदा ब्राउन

इस प्रकार हमने देखा कि बुढ़ापे की कुंजी किसी एक वंशाणु में नहीं है। इसके लिए अनेक वंशाणु जिम्मेदार हैं जो अलग-अलग अंगों में कार्यरत हैं। बुढ़ापे में सभी अंग एक साथ शिथिल नहीं पड़ते। कुछ अंगों पर बुढ़ापे का जल्दी असर होता है तथा कुछ अंगों पर देर से। इनमें से अनेक वंशाणुओं की क्रिया मंद होने की दर बाहर से हार्मोन आदि दवाएं देकर घटाई जा सकती है। सफेद मूसली, अश्वगंधा, जिसेंग आदि जड़ी-बूटियाँ बुढ़ापे की दर को कम कर सकती हैं। लेकिन जरा सोचिये जिस दिन आदमी ने मौत को जीत लिया तो आबादी का भयावह रूप देखने को मिलेगा। इस धरती पर खड़े होने की जगह नहीं मिलेगी। इसलिये प्राकृतिक संतुलन बहुत जरूरी है।

कांच-सिरामिकों के विभिन्न पहलू

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

वैज्ञानिक अधिकारी

तकनीकी भौतिकी एवं प्रारूप प्रौद्योगिकी प्रभाग

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400 085.

कांच एवं सिरामिक के एक अद्भुत सम्मिलन से निर्मित कांच-सिरामिक पदार्थों के विज्ञान तथा तकनीकी के विभिन्न क्षेत्रों में अनगिनित अनुप्रयोग हैं। ये पदार्थ कांच तथा सिरामिक पदार्थों के मुकाबले अधिक मजबूत संक्षारण रोधक, ऊष्मीय तौर पर स्थिर, रासायनिक अक्रियता जैसे गुणों वाले होते हैं। इनका ऊष्मीय प्रसार आवश्यकतानुसार नियंत्रित किया जा सकता है। फलस्वरूप आम सजावट एवं दैनिक उपयोग की वस्तुओं से लेकर प्रतिरक्षा क्षेत्र, इलेक्ट्रॉनिकी, प्रकाश इलेक्ट्रॉनिकी, औषधि एवं दंत विज्ञान में विभिन्न रूपों में इनका विशेष महत्त्व देखा जाता है। नैनो-विज्ञान की हाल में उभरती प्रमुखता ने नैनो-कांच-सिरामिकों के एक अभिनव क्षेत्र को जन्म दिया है। प्रस्तुत लेख में इस महत्त्वपूर्ण पदार्थ की संरचना निर्माण विधि एवं अनुप्रयोगों पर अद्यतन जानकारी दी गयी है।

क्या आपने कभी सोचा था कि हम किसी कांच या सिरामिक के बर्तन को सीधे गर्म स्टोव पर खाना पकाने के लिए रख सकते हैं ? रॉकेट में रखा राडार अत्यन्त प्रतिकूल वातावरण में किस प्रकार सुरक्षित रहता है ? लैप-टॉप अथवा कंप्यूटर के पर्दे पर द्रव-क्रिस्टल कैसे ठोस अवस्था के समरूप रहता है । ऐसे कुछ प्रश्न हैं जो आज वास्तविकता बनकर जन सामान्य के काम आ रहे हैं । परंतु इन असामान्य व्यवहारों में विज्ञान एवं तकनीकी की क्या भूमिका है यह एक विचारणीय बात है । इस संदर्भ में जिस बात का जिक्र किया जाता है या जिस कारण यह सब संभव हो पाता है वह है कांच एवं सिरामिकों का एक अद्वितीय सम्मिलन । कांच एवं सिरामिकों के गुणों को मिलाकर बनाया गया एक नया पदार्थ । यह नया पदार्थ और कुछ नहीं कांच - सिरामिक कहलाता है ।

कांच-सिरामिक क्या है ?

कांच-सिरामिक वे ठोस पदार्थ हैं जिनमें मणिभीय कण एक कांच के आव्यूह (मैट्रिक्स) में समान रूप से विसरित रहते हैं । इन्हें सामान्य बहु-मणिभीय पदार्थ से अलग वर्ग में रखा जाता है क्योंकि इसमें (बहु-मणिभीय पदार्थ में) प्रत्येक कण मणिभ (क्रिस्टल) होता है जो ठोस में अपने विभिन्न अभिविन्यास में रहते हैं तथा इन विभिन्न मणिभों (कणों) के बीच एक कण - सीमा रहती है । इसके विपरीत कांच - सिरामिक में मणिभीय कणों के गुण, कांच एवं मणिभों के परिमाण अनुपात के अनुसार बदलते हैं । अत: इन्हें विशेष मणिभ कारकों की उपस्थिति में नियंत्रित रूप से संसाधित करके हम अद्वितीय गुणों से युक्त पदार्थ बना सकते हैं । या यूँ कहा जा सकता है कि हम पदार्थ के गुणों को आवश्यकतानुसार बदल सकते हैं, उनके गुणों की इंजीनियरी कर सकते हैं । इनमें कांच एवं पारंपरिक सिंटर्ड सिरामिक दोनों के विशेष गुणों के सहज सम्मिलन की संभावना होती है । यहां तक कि हम ऐसे पदार्थ बना सकते हैं जिनके गुण अभी तक न कांच, न सिरामिक अथवा न अन्य धातु, या पॉलीमर में मालूम हैं । कांच-सिरामिक के लिए क्रिस्टलीय सिलिकेट तथा फॉस्फेट दो मुख्य घटक होते हैं । सिलिकन एवं फॉस्फेट के आयन नेटवर्क में किस प्रकार से बंधित हैं, के आधार पर कई प्रकार के पदार्थ बनाये जा सकते हैं ।

जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है इन्हें अकार्बनिक कांच तथा सिरामिकों के बीच की प्रावस्था मान सकते हैं । ये पदार्थों के मणिभीय तथा कांचीय दोनों प्रावास्थाओं के रासायनिक सम्मिलन से बने होते हैं । इनमें पदार्थों की मणिभीय तथा कांचीय भाग के अनुपात के अनुसार गुणों में परिवर्तन होता है । जहां तक मणिभीय भाग की बात है इसमें एक से अधिक मणिभीय प्रावस्थाएं हो सकती हैं । व्यावहारिक रूप में इन्हें मूल कांच के नियंत्रित मणिभीकरण प्रक्रिया द्वारा तैयार करते हैं जिसके लिए मूल कांच में विशेष नाभिकरण कारकों को मिश्रित किया जाता है । इस प्रकार विभिन्न मणिभीय प्रावस्थाएं कांचीय आव्यूह में पूर्णत: अंत:स्थापित होती हैं । इन मणिभों की प्रावस्थाओं, आमाप एवं वितरण के अनुसार पदार्थ के गुण निर्धारित होते हैं । ये सब मिलकर कांच-सिरामिक की विशेष सूक्ष्म संरचना तैयार करते हैं । यह सूक्ष्म संरचना पदार्थ संसाधन एवं मूल रासायनिक संघटना पर निर्भर करती है, जिसके फलस्वरूप पदार्थ अकल्पनीय गुणों को प्रदर्शित करते हैं । इन गुणों के आधार पर इनके अनेकानेक अनुप्रयोग आज हमारे सामने हैं ।

ऐतिहासिक पहलू :

हालांकि कांच-सिरामिकों का उपयोग 50-60 वर्ष पहले सामने आया है परंतु इनकी संकल्पना लगभग 270 वर्ष पहले मानी जाती है, जब 1739 में वैज्ञानिक एम.रिमूर के मन में एक विचार आया था कि एक सघन सिरामिक कांच के मणिभीकरण (क्रिस्टलीकरण) से बनाया जा सकता है । हांलाकि उसके बाद कई अन्य वैज्ञानिकों ने भी इसके बारे में सोचा, परंतु सफलता 1950 में एक सुप्रसिद्ध कांच रसायनज्ञ डॉ. एस. डी. स्टूकी को मिली । इस सफलता की कुछ अलग ही कहानी है । सच तो यह है कि स्टूकी को सिरामिक में कोई रुचि नहीं थी बल्कि वे तो चांदी के कणों को कांच में किसी तरह अवक्षेपित करके स्थाई फोटोग्राफी द्वारा उसका प्रतिबिंब बनाना चाहते थे । इसके लिए वे लीथियम सिलिकेट के कांच पर अध्ययन कर रहे थे । उन्होंने एक रात एक अप्रत्याशित घटनाक्रम में फरनेस (हीटर) का तापमान 850° सें, हो जाने पर एल्कली सिलिकेट कांच में चांदी के कणों का अवक्षेपण देखा । यह कांच कुछ सफेद सा हो गया तथा नीचे गिरने पर जो आवाज आई वह कांच के बजाय धातु की सी थी । इससे यह स्पष्ट हुआ कि यह पदार्थ कांच के मुकाबले अधिक प्रबल बन गया। यही सोच आगे चलकर 1959 में 'कॉर्निंगवेयर' के नाम से उपलब्ध खाना बनाने के बर्तनों तथा रॉकेट नोज (रॉकेट का अगला नुकीला भाग) के रूप में व्यावसायिक स्तर पर काम में आयी ।

कांच – सिरामिक बनाने की विधि :

जैसा कि पहले बताया गया है कि इसमें कांचीय तथा मणिभीय दोनों प्रावस्थाएं एक साथ रहती हैं । अधिकांशत: पदार्थ को पहले कांचीय अवस्था में बनाया जाता है । इसके लिए पदार्थ विशेष या संरचना विशेष के अनुसार कांच बनाने की उचित विधि का प्रयोग करते हैं । इस हेतु सर्वप्रथम पदार्थ की रासायनिक संरचना को निश्चित करना आवश्यक होता है । इसके लिए विभिन्न रासायनिक घटकों (पदार्थों) को सुनिश्चित अनुपात में लेकर उनको अच्छी तरह मिलाकर पीस लिया जाता है । इस काम के लिए बॉल मिल जैसी मशीनों का प्रयोग करते हैं। पूर्णत: मिश्रित पावडर को एल्यूमिना या अन्य उपयुक्त क्रूसीबल (बर्तन) में लेकर प्रयुक्त घटकों (सामान्यत: धातुओं के कार्बोनेट या नाइट्रेट) के अपघटन ताप तक गर्म करते हैं ताकि नाइट्रेट या कार्बोनेट विघटित होकर उनके ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाए। घटकों का मिश्रण समांगी बनाने के लिए इस प्रक्रिया को दोहराया भी जाता है । यह प्रक्रिया निस्तापन (कैल्सीनेशन) प्रक्रिया कहलाती है तथा प्राप्त पदार्थ को कैल्साइंड पदार्थ कहते हैं । इन्हें बनाने के लिए दो मुख्य विधियां हैं । (1) द्रवित (मेल्ट) पदार्थ विधि तथा (2) सिंटरिंग (ठोस अवस्था प्रतिक्रिया) विधि । पहली विधि में प्रक्रिया के पहले चरण में कैल्साइन किये गये पदार्थ को कांचीय अवस्था में तैयार करते हैं। इस पदार्थ का विभेदीय ऊष्मीय विश्लेषण – वि.ऊ.वि. (DTA) द्वारा नाभिकरण तथा मणिभीकरण तापमानों का पता चलाते हैं (चित्र – 1 में वि.ऊ.वि. वक्र दिखाया गया है) । दूसरे चरण में वि. ऊ. वि. द्वारा प्राप्त नाभिकरण तथा मणिभीकरण तापमानों के आधार पर इस पदार्थ को नियंत्रित दर से गर्म करतें हैं। इसमें तापमान बढ़ाने की दर, नाभिकरण एवं मणिभीकरण तापमानों पर स्थिर रखने का समय तथा ठंडा करने की दर की बड़ी भूमिका रहती है (चित्र – 2 कांच – सिरामिक बनाने के लिए प्रयुक्त ऊष्मीय चक्र) । मणिभीय कणों के आमाप नैनोमीटर से माइक्रोमीटर तक हो सकते हैं । दूसरी विधि में कैल्साइन किये गये पदार्थ के पावडर से पहले उचित आमाप की गुट्टिकाएं (पेलेट्स) हाइड्रॉलिक प्रेस का प्रयोग करके बनाते हैं । फिर इन गुट्टिकाओं को पहली विधि की तरह नियंत्रित नाभिकरण एवं मणिभीकरण द्वारा कांच-सिरामिक में परिवर्तित किया जाता है । यहां पर एक बात महत्त्वपूर्ण यह है कि इस विधि में नाभिकरण प्रक्रिया पृष्ठ नाभिकरण कहलाती है जबकि पहली विधि में होने वाली नाभिकरण प्रक्रिया स्थूल नाभिकरण प्रक्रिया होती है । इसके अलावा सॉलजेल (रासायनिक अवक्षेपण), विद्युत लेपन (इलेक्ट्रोप्लेटिंग), वाष्प निक्षेपण इत्यादि विधियों से भी कांच – सिरामिक बनाये जाते हैं ।

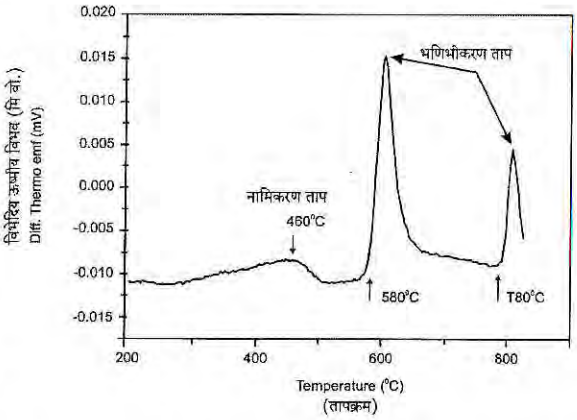

चित्र – 1 : विभेदीय ऊष्मीय विश्लेषण द्वारा नाभिकरण तथा मणिभीकरण तापमानों का पता चलाना

कांच – सिरामिकों के अनुप्रयोग :

यह एक अद्वितीय रासायनिक, भौतिक, यांत्रिक, जैविक तथा प्रकाशीय गुणों वाला पदार्थ होता है । इसमें कांच से बेहतर रासायनिक अक्रियता, ऊष्मीय स्थिरता, जंग (क्षारण)

प्रतिरोधकता, लंबे अवधि तथा स्थिरता, यांत्रिक प्रबलता, आवश्यक ऊष्मीय प्रसार गुणांक का अनूठा संयोजन होता है । इस आधार पर कांच-सिरामिक के अनुप्रयोगों की परास कांच तथा सिरामिकों के विभिन्न अनुप्रयोगों से बढ़कर ही है। आम सजावट की वस्तु से लेकर आधुनिक वास्तुकला, ऊर्जा संरक्षण, चिकित्सा के साथ-साथ अति विशिष्ट क्षेत्रों में देखने को मिलता है। इस लेख में इन सभी के बारे में जानकारी देना तो संभव नहीं है परंतु कुछ प्रतिनिधि क्षेत्र इस प्रकार हैं :

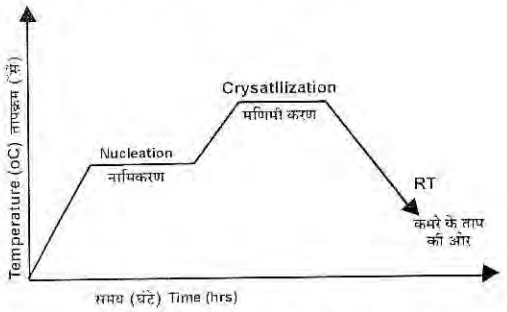

चित्र - 2 कांच सिरामिक बनाने के लिए प्रयुक्त उष्मीय चक्र

1) प्रतिरक्षा क्षेत्र

2) आम उपयोगी तथा सजावट की वस्तुएं (आम उपभोक्ता वस्तुएं)

3) इलेक्टॉनिकी

4) प्रकाशीय एवं प्रकाश - इलेक्ट्रॉनिकी

5) अधुनातन वास्तुकलात्मक पदार्थ (कठोर कांच-सिरामिक) यथा स्तंभ एवं अग्निरोधक दरवाजे

6) औषधि एवं डेंटिस्ट्री (दंत चिकित्सा)

प्रतिरक्षा क्षेत्र :

इसमें सबसे महत्वपूर्ण उपयोग रेडोम्स बनाने में है । ये रॉकेट तथा हवाई जहाज के अगले भाग (जिसे नोज़ कहते हैं) में प्रयुक्त राडार को सुरक्षित रखने एवं उसे सुचारू रूप से काम करने के लिए प्रयुक्त होता है । इस काम के लिए ऐसे पदार्थ की आवश्यकता होती है जिसमें समांगी एवं कम परावैद्युत (डाइ इलेक्ट्रिक) नियतांक, कम ऊष्मीय प्रसार, उच्च प्रबलता तथा उच्च क्षरण (एबरेशन) प्रतिरोध हो । हालांकि ऐसे गुण सिंटरड एल्यूमिना में पाये जाते हैं परंतु इन्हें बार-बार तैयार करना अत्यन्त विकट काम है । कांच-सिरामिक में पदार्थ की रासायनिक एवं सूक्ष्म संरचना पर नियंत्रण से यह काम आज आसान हो गया है ।

आम उपभोक्ता वस्तुएं :

इसके अंतर्गत खाना बनाने के लिए स्टोव (कुक-टॉप पैनल), न टूटने वाले डिनर वेयर (तश्तरियां, डोंगे, कटोरियां, चायदानी, कप, गिलास इत्यादि), आज अत्यंत प्रचलित हैं । इस काम के लिए कम ऊष्मीय प्रसार वाले कांच-सिरामिक प्रयुक्त किये जाते हैं । इसके लिए प्रयुक्त कांच-सिरामिक में लीथियम-एल्यूमिनियम सिलिकेट ($LiA1SiO_4$) - बीटा स्पोडूमीन ठोस घोल मुख्य क्रिस्टलीय प्रावस्था के साथ - साथ रुटाइल (TiO_2) गौण रूप में रहता है । यह सफेद रंग का होने के साथ - साथ अत्यंत कम ऊष्मीय प्रसार (7×10^{-7} डिग्री प्रति केल्विन) वाला होता है । इस कारण ये काफी ऊष्मीय शॉक भी सह सकते हैं । जब पारदर्शी किचन वेयर की बात होती है तो बीटा-क्वार्टज् ठोस-घोल प्रावस्था का उपयोग होता है । इन्हें आज लगभग शून्य ऊष्मीय प्रसार (1.5×10 डिग्री प्रति केल्विन) वाला भी बनाया जा चुका है । इन्हें बाजार में अलग-अलग नामों से जाना जाता है जैसे अमरीका की कॉर्निंग कंपनी का "विजन", फ्रांस की सेंटगोवन (यूरोकेरा) का "केरोग्लास", जर्मनी की शॉट कंपनी का "सेरॉन" एवं रोबेक्स और जापान की निपोन इलेक्ट्रिक ग्लास का "निपोसिराम" इत्यादि । ये कई प्रकार के डिजायन, आकृति, पारदर्शिता, शॉक प्रतिरोधता के साथ बिकते हैं ।

इलेक्टॉनिकी :

कुछ विशेष कांच-सिरामिकों का माइक्रोइलेक्ट्रॉनिकी में पैकेजिंग हेतु उपयोग होता है । 1970 तक इस काम के लिए एल्यूमिना के आधार का प्रयोग किया जाता था परंतु विशेष कांच-सिरामिकों के बन जाने के बाद अधिक दक्ष इलेक्ट्रॉनिकी पैकिंजिंग में इनका उपयोग बढ़ा है। कांच सिरामिकों का परावैद्युत नियतांक (4-6), लोकप्रिय आधार पदार्थ एल्यूमिना ($A1_2O_3$) के परावैद्युत नियतांक (9) से कम होता है । इन्हें कम ताप ($<1000^0$ सें.) पर अन्य इलेक्टॉनिकी घटकों के साथ सह-ऊष्मीय उपचार दे सकते हैं तथा इन्हें तांबा, चांदी अथवा सोना द्वारा चालक भी बनाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि एल्यूमिना को ऊष्मीय उपचार के लिए 1500^0 सें. तक गर्म करना पड़ता है । यह निसंदेह दक्षता को बढ़ाने तथा लागत कम करने के की दृष्टि से एक बहुत बड़ी उपलब्धि है । बाजार में ये पदार्थ फोटोफॉर्म, फोटोसिरॉम, फोटूरॉन के नाम से मिलते हैं । इनके अलावा माइका प्रकार के मशीन के अनुकूल अच्छे कुलाचक भी मिल रहे हैं।

प्रकाशीय एवं प्रकाश-इलेक्ट्रॉनिकी :

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि पदार्थ के प्रकाशीय गुणों को सुनियोजित संसाधन द्वारा नियंत्रित कर सकते

हैं। इसलिए उच्च पारदर्शिता, आकार की स्थिरता, उच्च दीप्तिशीलता, प्रकाश संवेदी होने के कारण इनके अनेकानेक प्रकाशीय एवं प्रकाश इलेक्ट्रॉनिकी अनुप्रयोग देखने को मिलते हैं । चित्र-3 में पारदर्शी कांच सिरामिक की स्पष्टता देखी जा

पारदर्शी काँच - सिरामिक का एक उदाहरण ।

सकती है । सबसे महत्वपूर्ण विकास लगभग शून्य ऊष्मीय प्रसार वाला पदार्थ, जो ''जीरोडॉर''के नाम से प्रचलित हैं, बनाने में है। इसे जर्मनी की शॉट कंपनी ने तैयार किया है जिसका उपयोग विशालकाय टेलीस्कोप के दर्पण के आधार के रूप में किया जा रहा है। जीरोडॉर में भी बीटा-क्वार्ट्ज ठोस घोल का प्रयोग होता है। साथ ही अब ये हवाई जहाजों में प्रयुक्त लेज़र-जाइरोस्कोप में भी प्रयोग किये जा रहे हैं । जीरोडॉर में पारदर्शिता का एक और लाभदायक गुण होता है । 25 मिमी. मोटे आधार की 0.7 से 2.5 माइक्रॉन तक की तरगदैर्ध्य परास में 80% तक की पारदर्शिता मिलती है। बताया जाता है कि शॉट ग्लास कंपनी ने 1988 में ही लगभग 8.2 मीटर व्यास के टेलीस्कोपिक दर्पण को बनाने में सफलता हासिल कर ली थी।

सौर ऊर्जा इंजीनियरी के लिए प्रकाश पारदर्शिता, अवशोषण एवं उत्सर्जन सभी गुणों का अलग-अलग रूप में प्रयोग होता है । इस काम में मुलाइट ($3A1_2O_32SiO_2$) नामक कांच-सिरामिक का विशेष रूप से उपयोग होता है । मुलाइट में 0.1 भार% तक क्रोमियम ऑक्साइड मिलाने से ये दीप्तिशील बन जाते हैं । हालांकि अभी तक इनमें अपेक्षित प्रकाश क्षमता (क्वांटम-क्षमता) नहीं मिल पाई है फिर भी पदार्थों के गुणों को नियंत्रित कर तथा नैनो-स्तर की सूक्ष्म संरचना द्वारा इन्हें उपयोगी बनाने के लिए प्रयास चल रहे हैं ।

एक अन्य अनुप्रयोग के तहत ये कांच-सिरामिक फाइबर ब्रैग ग्रेटिंग अथर्मलाइजेशन में प्रयुक्त किये जा रहे हैं । जैसा कि हम जानते हैं कि फाइबर ब्रैग ग्रेटिंग वे प्रकाश-युक्तियां हैं जो एक अत्यन्त संकीर्ण तरंगदैर्ध्य का प्रकाश परावर्तित करते हैं, और शेष को पारगत होने देते हैं। अथर्मलाइजेन उपयोग में फाइबर को ऋणात्मक ऊष्मीय प्रसार वाले कांच-सिरामिकों पर लगाया जाता है। ताप परिवर्तन के कारण परावर्तित प्रकाश की आकृति बदलने की जो व्यवहारिक समस्या आती है, उसे ऋणात्मक ऊष्मीय प्रसार वाला कांच-सिरामिक सही कर देता है।

लैपटॉप जो एक तरह का आधुनिक कंप्यूटर है तथा जिसे बैटरी द्वारा प्रचालित किया जाता है, जिस पर किसी भी जगह, चाहे वह हवाई जहाज हो, पानी का जहाज हो या रेलगाड़ी अथवा और, पर काम कर सकते हैं, अपनी इलेक्ट्रॉनिक डाक देख सकते हैं, इच्छानुसार चलचित्र भी देख सकते हैं । इसके पर्दे (पटल) में द्रवीय क्रिस्टल का उपयोग किया जाता है । इस द्रवीय क्रिस्टल प्रदर्श (LCD) में विशेष रासायनिक संघटन वाले लीथियम एल्यूमिनियम सिलिकेट का प्रयोग होता है जिसमें बीटा-क्वार्ट्ज, मणिभीय प्रावस्था (0.1 माइक्रॉन कण आमाप) में रहता है। यह कण आमाप(साइज़) दृश्य विकिरण की तरंग दैर्ध्य से कम होने के कारण पारदर्शी होता है । इस मणिभीय पदार्थ का वर्तनांक भी कांच की मैट्रिक्स के वर्तनांक के बराबर होने से प्रतिबिंब की स्पष्टता में कोई कमी नहीं आती है । इस पदार्थ को जापान की ''निपोन इलेक्ट्रिक ग्लास'' कंपनी नियोसिरॉम के नाम से बेचती है। द्रवीय क्रिस्टल प्रदर्श के कांच-सिरामिक का निर्माण दो चरणों में किया जाता है। पहले कांच को पिघलाकर रोलिंग, खींचने या दबाने की प्रक्रिया द्वारा प्लेट (शीट) (लगभग एक मिमी.) के रूप में बना लेते हैं । फिर दूसरे चरण में उनको इस प्रकार गर्म करते हैं कि उसमें 0.1 माइक्रॉन साइज के कण वाले बीटा-क्वार्ट्ज ठोस घोल (Solid Solution) बन सके । द्रवीय क्रिस्टल प्रदर्श के लिए इन शीट (प्लेट) में 0.02 माइक्रॉन की समान्तरता एवं 0.01 माइक्रॉन से कम का खुरदरापन होना चाहिए ।

इसी प्रकार क्रोमियम युक्त मुलाइट का लेजर तथा सौर केंद्रक के रूप में व्यापक उपयोग हो रहा है । फोटोनिक अनुप्रयोगों के लिए काम में लाये जा रहे पारदर्शी कांच-सिरामिकों में सिलिकेट ऑक्सी फ्लूओराइड, जर्मेनियम ऑक्सी फ्लूओराइड टैल्यूराइट, ऑक्सी हेलाइड इत्यादि दक्ष लेजर होस्ट भी हैं । शुद्ध फ्लूओराइड पारदर्शी कांच सिरामिकों में ZrF_2 युक्त CdI_2-LiF - AlF_3 PbF_2 तथा, LaF_3, -ErF_3 - GaF_3 - AlF_3 कांच सिरामिक बनाए गये हैं जिनमें 95% तक मणिभीकरण पर 80% तक की पारदर्शिता मिली है और साथ ही मणिभीय प्रावस्था तथा कांचीय प्रावस्था का वर्तनांक भी समान रहता है ।

नवीनता वाले वास्तुकलात्मक पदार्थ :

यह तो हम जानते हैं कि अधुनिक वास्तुकला में समतल, ऊर्जा संरक्षण योग्य एवं सुरक्षात्मक कांच के उपयोगों की कोई सीमा नहीं है । परंतु कांच की भंगुरता का गुण ही उसकी एक खास कमी है । आज इस कमी को काफी हद तक कम करने में कांच-सिरामिकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । इसके साथ-साथ कांच-सिरामिकों के हल्के, आसानी से घुमावदार बनने की क्षमता, विभिन्न टैक्चर वाले पूर्व निर्मित ईंट/ब्लॉक/स्तंभ, पैनल यदाकदा देखने को मिल रहे हैं (चित्र-4)। इनकी खूबी यह है कि ये सामान्यत: प्राकृतिक पत्थर से 30% हल्के होते हैं । मजबूती में ये कांच से बेहतर होने के साथ-साथ लगभग शून्य ऊष्मीय प्रसार से ताप परिवर्तन से टूटने की कम संभावाना होती है । इन्हें आग प्रतिरोधक गुणों वाला भी बना जा चुका है । बाजार में वास्तुकला संबंधी कांच-सिरामिक "नियोपैरिज" (निपोन इलेक्ट्रिक ग्लास कंपनी) नाम से मिलते हैं ।

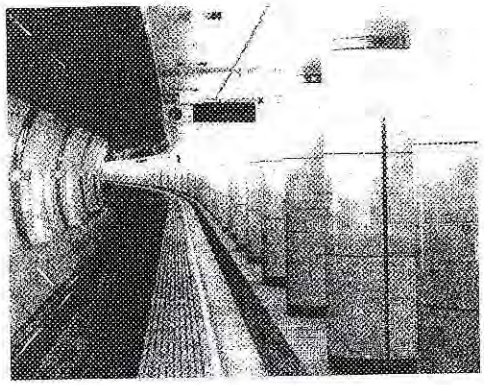

चित्र - 4 वास्तुकला में कांच-सिरामिक का स्तंभों के रूप में उपयोग ।

दंत विज्ञान एवं चिकित्सा हेतु :

जैवानुकूल एवं सक्रिय कांच-सिरामिकों का दंत एवं चिकित्सा विज्ञान में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान हो रहा है । आमतौर पर ज्यादा हड्डी टूट जाने पर धातु (टाइटेनियम डाईऑक्साइ लेपित स्टेनलैस स्टील) की पट्टियां/छड़ें नट-बोल्ट की सहायता से शरीर में लगा दी जाती हैं ताकि समय के साथ - साथ हड्डी अपनी प्राकृतिक संवृद्धि से जुड़
जाये और बाद में इन धातु की पट्टी/छड़ को निकाल दिया जाता है । परंतु लगातार हिलने-डुलने के कारण, एब्रेशन (रगड़) द्वारा धातु के कण शरीर में जमा होने लगते हैं जिनका बुरा असर पड़ता है । अत: विज्ञान की शोधों के फलस्वरूप ऐसे पदार्थों की खोज हुई जो समय के साथ-साथ शरीर के भाग बन जाते हैं तथा उनका बुरा असर बहुत कम होता है । ये जैव सिरामिक कहलाते हैं । इस क्षेत्र में दो प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता होती हैं ; (1) रोपण यानि चिकित्सा के लिए कृत्रिम अंगों की पूर्ति (प्रोस्थेसिस) संबंधी जरूरत तथा (2) दांतों की पुनर्प्राप्ति हेतु जरूरत । पहले प्रकार के पदार्थों को दंत चिकित्सक कृत्रिम दांतों को बनाने तथा शल्य चिकित्सक अंग रोपण (इंप्लांट) के लिए काम में लाते हैं । दांतों के दंत मूल भरने (रूट फिलिंग) या दंत इंप्लाट इसी श्रेणी में आते हैं । इसी प्रकार दवा के क्षेत्र में ये पदार्थ अस्थि रोग, सिर तथा गर्दन की सर्जरी (शल्य चिकित्सा) में काम आते हैं । दूसरे वर्ग में आने वालों जैव पदार्थों में वे पदार्थ आते हैं जिन्हें दांतों की पुनर्प्राप्ति के लिए प्रयोग में लाते हैं । इन्हें शरीर में (दांतों के जबड़ों में) प्रत्यारोपित नहीं किया जाता है । इनका उपयोग प्राकृतिक दांतों की पुनर्प्राप्ति के लिए होता है । विशेष रूप से दांतों के क्राउन, ब्रिज, जड़ायी (पच्ची), वीनियर (पृष्ठावरण) परत में होता है । चौंका देने वाली बात यह है कि विदेशों में दंत चिकित्सा एक अत्यंत मंहगी है और इन पदार्थों की आवश्यकता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है ।

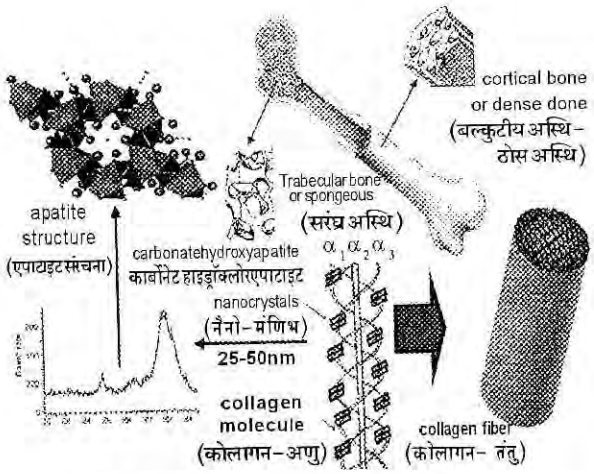

चित्र - 5 : मानव हड्डी की संरचना

अंग रोपण हेतु पदार्थों का जैव सक्रिय होना परमावश्यक है । यानी इन कांच-सिरामिकों में जैव सक्रिय हाइड्रॉक्सी कार्बोनेट एपेटाइट परत होनी चाहिए जिससे ये शरीर में हड्डी तथा नरम ऊत्तकों (soft tissues) के साथ बंधित हो सकें । इनके उपयोग के आधार पर (क्या ये भार लेने वाले अंग जैसे हिप बोन इत्यादि हैं या नहीं) कांच-सिरामिक के गुणों (मुड़ने की क्षमता, कठोरता, यंग गुणांक) को नियंत्रित करना पड़ता है। इनके प्रकाशीय गुण जैसे पारदर्शिता, अर्धपारदर्शिता को भी ध्यान में रखना पड़ता है (चित्र - 5 में मानव हड्डी की संरचना दिखाई गयी है ।)

इनके विपरीत पुनर्प्राप्ति से सबंधित अनुप्रयोग में जैवानुकूलता सबसे अहम् होती है । रोपण हेतु बाजार में कुछ पदार्थ मिलते हैं जो ''सेराबोन'' (एपाटाइट-वोलास्टोनाइट) ''सेरावेटल'' (एपाटाइट-डिविट्राइट) तथा ''बयोवेरिट'' (माइका-एपाटाइट) के नाम से प्रचालित है। इसके अलावा बायोग्लास नामक कांच-सिरामिक का उपयोग गले तथा सिर की शल्य चिकित्सा में होता है।

विशिष्ट उपयोग :

कई ऐसे कांच-सिरामिक भी तैयार किये गए हैं जिनका उपयोग इलेक्ट्रॉनिकी में एक्चुऐटर (शुरू/प्रवृत्त, करनेवाली युक्ति), लेपन सोल्डर, उच्च दाब, वोल्टता इत्यादि में होता है । इनके अलावा आज सीलेंट तकनीकी में इनका महत्व रासायनिक उद्योग, निर्वात उद्योग, अंतरिक्ष एवं नाभिकीय प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में होता है।

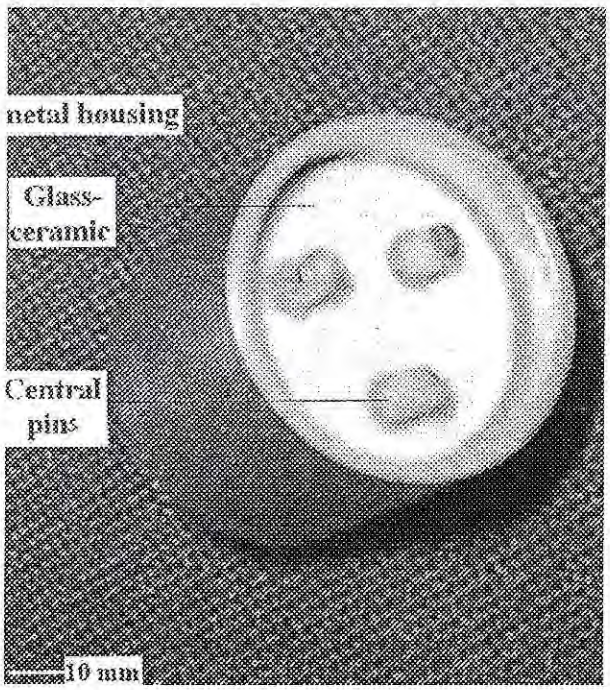

चित्र - 6 : कांच सिरामिक धातु सील

कांच सिरामिकों पर हमारे देश की कुछ प्रयोगशालाओं में महत्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं । लेखक की प्रयोगशाला के अतिरिक्त केंद्रीय कांच तथा सिरामिक शोध संस्थान, कोलकाता एवं भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, में इस दिशा में काम चल रहे हैं । मैग्नेशियम एल्यूमिनियम सिलिकेट मशीनीकरण योग्य कांच-सिरामिक, लीथियम-जिंक-सिलिकेट, लीथियम-एल्यूमिनिय सिलिकेट कांच सिरामिक, आयरन डीप्ड जैव सिरामिक तथा अन्य जैव सिरामिक पर महत्वपूर्ण शोध एवं विकास कार्य हो रहे हैं । निर्वात एवं उच्च दाब पर्यावरण में प्रयुक्त होने वाली युक्तियां (कांच-सिरामिक-धातु सील), चित्र-6 में दिखाई गयी है। अत्योच्य निर्वात एवं उच्च वोल्टता में उपयोगी मशीनीकरण योग्य मैग्नेशियम - एल्यूमीनिय-सिलिकेट कांच-सिरामिक के घटक खासतौर पर उल्लेखनीय हैं। उच्च ताप सह कांच-सिरामिक सीलेंट की आवश्यकता समतल ठोस-ऑक्साइड ईंधन सेल (SOFC) के विकास के लिए अत्यन्त जरूरी है। रेडियो सक्रिय अपशिष्ट अचलीकरण हेतु कांच का उपयोग सर्वप्रचलित है । इस के लिए कांच-सिरामिक और भी अच्छे सिद्ध हो रहे हैं अत: यह क्षेत्र पुन: सक्रिय हो रहा है ।

संक्षेप में कांच सिरामिकों का क्षेत्र बहुआयामी है तथा इसके अनगिनत अनुप्रयोग इस क्षेत्र को विभिन्न दिशाओं से शोध एवं विकास के लिए प्रेरित कर रहे हैं । नैनो-विज्ञान की प्रमुखता ने तो नैनो -कांच सिरामिकों के एक अभिनव क्षेत्र को जन्म दिया है । इससे न केवल कांच-सिरमिकों की महत्ता और अधिक बढ़ेगी बल्कि कई नये क्रांतिकारी अनुप्रयोग भी सामने आएंगे ।

ऊष्मीय, तैलीय एवं नाभिकीय प्रदूषण : कारण, समस्याएँ एवं बचाव

डॉ. गणेश कुमार पाठक एवं सुनीता चौधरी

रीडर, भूगोल विभाग, ए. एन. एम. पी. कॉलेज, दूबे छपरा, बलिया, (उ. प्र.) - 277 205.

प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या है जो मानव जीवन को किसी न किसी रूप में प्रभावित कर रहा है। इसके कई स्रोत हैं जो मानव सभ्यता के विकास के साथ साथ अधिक बढ़े हैं। इन सबके पीछे अविवेकशील एवं अनियंत्रित प्रयासों । विकास की होड़ है। आवश्यकता इस बात की है कि जब भी विकास के लिए नयी प्रद्योगीकियां अथवा संसाधन प्रणालियों को अपनाया जाय तो उसके प्रदूषण संबंधी पहलुओं पर भरपूर ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रस्तुत लेख में आज के कुछ ज्वलंत प्रदूषण स्रोतों जिनमें तैलीय, ऊष्मीय तथा नामिकीय प्रदूषण शामिल हैं के कारण, समस्याओं तथा बचाव संबंधी पहलुओं पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

वर्तमान समय में विकसित, औद्योगिकी एवं प्रौद्योगिकी ने एक तरफ जहाँ अनेक सुविधाओं को जन्म दिया है, वहीं दूसरी तरफ जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण के अलावा ऐसे खतरनाक प्रदूषणों को भी जन्म दिया है, जो मानव का अस्तित्व मिटाने के लिए पर्याप्त हैं। ऐसे प्रदूषणों में ऊष्मीय प्रदूषण, तैलीय प्रदूषण एवं नाभिकीय प्रदूषण मुख्य हैं।

1. ऊष्मीय प्रदूषण :

विभिन्न उत्पादक संयंत्रों में विभिन्न रिएक्टरों के अतितापन के निवारण के लिए नदी एवं तालाबों के जल का उपयोग किया जाता है। शीतलन की प्रक्रिया के फलस्वरूप गर्म हुआ जल पुन: जलस्त्रोतों में गिराया जाता है। इस तरह के गर्म जल से जलस्त्रोतों के जल के ताप में हानिकारक वृद्धि हो जाती है, इसे ही ऊष्मीय प्रदूषण कहा जाता है।

उद्योगों के अतिरिक्त वाष्प अथवा परमाणु शक्ति चालित विद्युत उत्पादक संयंत्रों द्वारा भी ऊष्मीय प्रदूषण होता है। ऊर्जा संयंत्रों में द्रवाणितों के शीतलीकरण के लिए पर्याप्त प्राकृतिक जल का उपयोग किया जाता है।

एक आंकलन के अनुसार वर्ष 2000 के अंत तक अमरीका के जल का 80% विद्युत उत्पादन संयंत्रों में होकर गुजरा था, जो जलाशयों के तापमान में अत्यधिक वृद्धि का कारण बना। उल्लेखनीय है कि एक परंपरागत संयंत्र की तुलना में परमाणु ऊर्जा चालित संयत्र (40 से 50%) प्रतिशत अधिक अपशिष्ट ऊष्मा उत्पन्न करते हैं।

समुद्रों में किए गए अंतर्जलीय परमाणु विस्फोटों तथा अंतरिक्ष यानों के जल में उतरने से भी ऊष्मीय प्रदूषण में वृध्दि हो रही है। बुणकेर स्टर्लिंग के अनुसार "वर्ष 1970 में विश्व के जलाशयों में 16000000 लाख टन गर्म जल का उत्सर्जन होता था" जो एक आंकलन के अनुसार वर्ष 2000 के अंत तक बढकर लगभग 58000000 लाख टन हो गया।

ऊष्मीय प्रदूषण का विशेष प्रभाव जल-जीवों पर पड़ता है। बड़े जीव 35^0 से 40^0 सें. ग्र. से अधिक तापमान सहन नहीं कर पाते है। जल के तापमान में वृद्धि हो जाने से ऑक्सीजन की घुलनशीलता में भी कमी आ जाती है तथा लवणों की मात्रा में भी वृद्धि हो जाती है। लामाण्ट सी. कुले के अनुसार, "ऊष्मीय प्रदूषण के प्रभाव से जीवाणुओं के शरीर पर अनेक भौतिक व रासायनिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगते हैं तथा जीव संरचना में व्यापक बदलाव आ जाता है।

2. तैलीय प्रदूषण :

विभिन्न औद्योगिक संयंत्रों से नदी एवं अन्य जल स्त्रोतों में तेल एवं तैलीय पदार्थों के कारण तैलीय प्रदूषण होता है। तैलीय प्रदूषण के कारण अमरीका की क्वाहोगा नदी एवं भारत के बिहार राज्य में मुंगेर के पास तेलशोधन कारखाने के तैलीय अपशिष्ट के गंगा में मिलने से आग लग चुकी है। समुद्रों में तो तेल प्रदूषण की संभावना अधिक रहती है, क्योंकि तेलवाहक जहाजों से तेल समुद्र में रिसता रहता है तथा जहाजों के दुर्घाटनाग्रस्त हो जाने से तो भयंकर आग लग जाती है। एक आंकलन के अनुसार विभिन्न कारणों से पेट्रोलियम के लगभग 50 लाख टन से 1 करोड टन उत्पाद समुद्र में मिलते है। स्टर्लिंग बुणकेर के अनुसार, "वर्ष 1970 में 690 लाख पेट्रोलियम अपशिष्ट उत्पाद उत्पन्न हुआ था जो आंकलन के अनुसार वर्ष 2000 के अंत तक लगभग 2440 लाख टन हो गया। लॉमड

के अनुसार दुर्घटनाग्रस्त तेल टैंकर पारिस्थितिकी के दुश्मन हैं। इनके अनुसार विश्व के तेल वाहक 6833 तेल टैंकरों के बेड़े में 70% टैंकर पुराने हैं, जिन्हें जल परिवहन से हटा देना चाहिए। विभिन्न देशों को विभिन्न समुद्री तेल टैंकरों द्वारा विभिन्न वर्षों में दुर्घटनाग्रस्त होने पर उनसे रिसे तेल का विवरण तालिका - 1 से स्पष्ट है।

जहाजी तेल टैंकरों का दुर्घटनाग्रस्त होने का क्रम आज भी बदस्तूर जारी है। तालिका - 1 के अवलोकन से यह भी स्पष्ट हो रहा है कि समुद्र तेल के रिसाव एवं सागरीय जल किस कदर प्रदूषित हो रहे हैं।

भयंकर दुष्प्रभाव दिखाते हैं। इन्हें ही नाभिकीय या रेडियोधर्मी प्रदूषण कहा जाता है। इस तरह नाभिकीय प्रदूषण एक ऐसा प्रदूषण है जो रेडियोधर्मी पदार्थों के द्वारा स्थलमण्डल, वायुमण्डल, जलमण्डल एवं संपूर्ण जीवमण्डल को प्रभावित करता है। चूँकि रेडियोधर्मी पदार्थों का विघटन धीमे-धीमे होता है, अत: इसका दुष्प्रभाव दीर्घकाल तक दृष्टिगोचर होता रहता है। रेडियोधर्मी पदार्थों से रेडियोधर्मी विकिरण निकलता है। इनमें से कुछ रेडियोधर्मी विकिरण तो ऐसे है जो दो-तीन अरब वर्षों तक लगातार विकिरण बरसा सकते हैं। ये विकिरण वास्तव में

तालिका - 1

विश्व के प्रमुख दुर्घटनाग्रस्त तेल टैंकर एवं उनसे रिसा तेल

स्त्रोत: नवभारत टाइम्स, लखनऊ, 8 फरवरी, 1993, पृ. 5.

दिनांक एवं वर्ष	जहाज के नाम एवं देश	रिसा तेल (मीट्रिक टन में)
18 मार्च, 1967	टारेकेनियन (लाइबेरिया)	11900
19 दिसंबर, 1972	सीस्टार (दक्षिणी कोरिया)	115000
24, जनवरी, 1976	ओलिम्पिक बवेरी (लाइबेरिया)	250000
12 मई, 1976	उरक्यूइया (स्पेन)	101000
7 जून, 1976	शाआमारू (जापान)	2335000
15 दिसंबर, 1976	हवन (साइप्रस)	4000
15 दिसंबर, 1976	आर्मा मर्चेण्ट (लाइबेरिया)	28000
16 मार्च, 1978	जमोकोकाडीज (लाइबेरिया)	220000
31 दिसंबर, 1978	एन्ड्रास पपत्रिका (ग्रीस)	40000
19 जुलाई, 1979	एटलकांटिक एक्सप्रेस	300000
23 फरवरी, 1980	आइरिनिस सेरेनेश (ग्रीस)	102000
6 मई, 1983	कास्टिलो दी बेलिवय (स्पेन)	100000
24 मार्च, 1989	एक्सान वाटडेज (स. रा. अमरीका)	40000
1नवंबर, 1989	वर्मा अगाटे (लाइबेरिया)	37000
3 दिसंबर, 1992	एजियन सी (लाइबेरिया)	70000
1 जनवरी, 1993	ब्रेमर (लाइबेरिया)	8500
21 जनवरी, 1993	मेचर्स्कनेविगेटर (डेनमार्क)	300000

3. नाभिकीय प्रदूषण :-

वर्तमान समय में परमाणविक विस्फोटों एवं परीक्षणों, परमाणु विद्युत गृहों से अवशिषट रेडियोधर्मी पदार्थ एवं संयंत्रों से रिसने वाला नाभिकीय पदार्थ पर्याप्त मात्रा में वायुमण्डल में पहुँचकर दूर-दूर तक फैल जाते हैं, जो बाद में अनवरत रूप में धीरे-धीरे धरातल पर गिरते है तथा जलस्त्रोतों, मिट्टी, वनस्पतियों तथा मानव एवं अन्य जीव जन्तुओं के संपर्क में आकर अपना अल्फा, बीटा आदि कणों या विद्युत चुंबकीय तरंगों के रूप में प्रवाहित होती हुई ऊर्जा है, जो किसी भी जीवधारी के संपर्क में आने पर उसे हानि पहुँचा सकती है। इस प्रकार नाभिकीय प्रदूषण पर्यावरणीय प्रदूषणों में सबसे अधिक खतरनाक है।

नाभिकीय प्रदूषण के कारण :

नाभिकीय प्रदूषण का प्रमुख कारण परमाणु बमों के परीक्षण एवं विस्फोट, परमाणु विद्युत गृहों से विसृत अपशिष्ट

कचरा एवं परमाणु संयंत्रों से होने वाले नाभिकीय रिसाव से उत्पन्न रेडियोधर्मी पदार्थ हैं जिसके कारण विकरित होकर वायुमण्डल में फैल जाते हैं। नाभिकीय ऊर्जा प्राप्ति के दौरान प्राकृतिक रेडियो सक्रिय पदार्थों को विभिन्न प्रक्रियाओं एवं सोपानों से गुजरते समय भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में निर्मित अवशिष्ट का तदनुसार प्रबंध एवं विनियोजन किया जाता है। संपूर्ण नाभिकीय या ईंधन चक्र में पर्याप्त रेडियोधर्मी पदार्थ अवशिष्ट होते हैं। साथ ही साथ यूरेनियम विखंडन के द्वारा उत्पाद, उत्तेजित रेडियो सक्रिय पदार्थ ट्रांसयूरेनियम तत्त्व एवं ईंधन की पुनर्योजी व्यवस्था में पृथक होने वाले पदार्थ भी इसके अंतर्गत सम्मिलित किए जाते हैं। प्राकृतिक यूरेनियम, अयस्क की खुदाई, सांद्रण, संवर्धन से लेकर संपूर्ण नाभिकीय ईंधन चक्र-प्रकक्षम में होने वाले परिवर्तोनों के दौरान अति घातक रेडियो सक्रिय पदार्थ, जैसे ^{230}Th, ^{226}Ra, ^{222}Rn, ^{210}Pb आदि पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होते हैं। अपने गुणधर्मों के अनुसार जैव एवं जड़ पदार्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार की अंतक्रिया करते हैं। वैज्ञानिकों ने रेडियो सक्रिय अवशिष्टों को पाँच वर्गों में विभक्त किया है- 1. रेडियो-धर्मिता, 2. भौतिक अवस्था, 3. विकिरण उत्सर्जन क्षमता 4. अर्द्ध आयु, 5. विसर्जन के प्रकार एवं विधियाँ।

वैज्ञानिकों ने नाभिकीय अपशिष्ट विसर्जन में द्रव्य अवशिष्टों को तीन वर्गो में विभक्त किया है -

1. अति उच्च स्तरीय द्रव्य अवशिष्ट - इनकी रेडियो धर्मिता 100 क्यूरी प्रति लीटर से अधिक होती है।

   (1 क्यूरी = 3.7×10^{10} विखण्ड प्रति सेकण्ड)

2. मध्यम स्तरीय द्रव्य - इनकी रेडियो धर्मिता 1 माइक्रो क्यूरी से 100 क्यूरी प्रति लीटर होती है।

3. निम्न स्तरीय द्रव्य अवशिष्ट - इनकी रेडियो धर्मिता 0 से 100 माइक्रो क्यूरी प्रति लीटर होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नाभिकीय प्रदूषण के प्रमुख कारण स्ट्रॉन्शियम, थोरियमम, कार्बन आदि रेडियोधर्मी पदार्थ तथा परमाणु परीक्षणों एवं नाभिकीय शस्त्रों के विस्फोटों से उत्पन्न रेडियोधर्मी पदार्थ मुख्य हैं जो वायुमण्डल, स्थलमण्डल एवं जलमण्डल में समाहित होकर प्रदूषण फैलाते हैं जिनसे छुटकारा पाना बहुत कठिन है।

वर्तमान समय में विश्व में कितना रेडियोधर्मी पदार्थ निकल रहा है इसका अंदाजा हम विश्व के 36 देशों में कार्यरत रिएक्टरों से ही लगा सकते हैं। इनसे 31 देशों के 439 औद्योगिक आणविक ऊर्जा गृह लगभग 3.6×10^{10} मेगावाट विद्युत ऊर्जा उत्पन्न कर रहे हैं, इन परमाणु विद्युत गृहों से पर्याप्त रेडियोधर्मी अवशिष्ट निःसृत हो रहा है। यही नहीं 21 वीं सदी के प्रारंभ में ही ऐसे 30 और परमाण्विक ऊर्जा गृहों की नींव रखी जा चुकी है। वर्तमान समय विश्व में प्राप्त नाभिकीय ऊर्जा घरों का विवरण तालिका - 2 से स्पष्ट है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इन परमाणु विद्युत गृहों में कार्यरत परमाणु भट्टियों में यूरेनियम, प्लूटोनियम या थोरियम जैसे पदार्थ जिनसे हमेशा अदृश्य किन्तु घातक किरणें निकलती रहती है, प्रयुक्त होते हैं।

विश्व में घटित नाभिकीय घटनाएँ एवं दुर्घटनाएँ :

नाभिकीय प्रदूषणों का सर्वप्रथम प्रभाव जापान में महसूस किया गया, जब द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 6 अगस्त 1945 को अमरीका द्वारा हिरोशिमा नगर पर तथा 9 अगस्त, 1945 को नागासाकी नगर पर परमाणु बम गिराया गया जिसके प्रभाव से इन दोनों नगरों के हजारों व्यक्ति काल कवलित हो गए और लाखों लोग प्रभावित हुए और दोनों नगर मलवे के ढेर में बदल गए। यही नहीं इसका दुष्प्रभाव वर्तमान समय में भी दृष्टिगोचर हो रहा है, जिसके चलते काफी लोग अन्धे हो गए, कैंसर से ग्रस्त हैं एवं अपंग हैं। इसके बाद सर्वप्रथम जब 1951 में परमाणु विद्युत गृह की स्थापना की गयी तो लोगों को ऊर्जा संकट के समाधान के प्रति एक आशा जगी और 1987 तक 26 देशों के 406 परमाणु विद्युत गृहों से लगभग 2.84 लाख मेगावाट परमाणु विद्युत का उत्पादन होने लगा और 2003 तक विश्व के 31 देशों द्वारा 439 विद्युत गृहों से लगभग $3.6X10^5$ मेगावाट विद्युत ऊर्जा का उत्पादन होने लगा। किन्तु अचानक जब 28 मार्च, 1979 को अमरीका में थ्रीमाइल आइलैण्ड रिएक्टर में भीषण दुर्घटना हुई और इस दुर्घटना के बाद अत्यधिक रेडियोधर्मी पदार्थ वायुमण्डल में फैल गए तो लोगों के होश-हवाश उड़ गए और आस-पास के लोगों को वहाँ से हटाया गया। इसके 7 वर्ष बाद 26 अप्रैल 1986 को विश्व की सबसे भयानक नाभिकीय दुर्घटना घटी, जब तत्कालीन सोवियत संघ के यूक्रेन प्रान्त में कीव के निकट चेरनोविल स्थित एक रिएक्टर इकाई की छत पिघल गयी, जिसके चलते न केवल सोवियत संघ में बल्कि संपूर्ण उत्तरी - पश्चिमी यूरोप में रेडियोधर्मी विकिरण का फैलाव हो गया। इस विकिरण के फैलाव से उत्पन्न नाभिकीय प्रदूषण से न केवल हजारों लोग प्रभावित हुए, बल्कि उस पूरे क्षेत्र के जीव - जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर भी दुष्प्रभाव पड़ा। इस परमाणु दुर्घटना से 30 वर्षो के दौरान लगभग 10-15 करोड़ विकिरण लोगों पर पड़ा होगा, जिससे 10 लाख से अधिक लोग शिकार हुए है।

नाभिकीय प्रदूषण का दुष्प्रभाव :

नाभिकीय प्रदूषण का दुष्प्रभाव अनेक रूपों में देखने को मिलता है । जब परमाणु अस्त्रों का परीक्षण निर्जन टापुओं, खुले मैदानों अथवा समुद्रों में किया जाता है तो एस क्षेत्र के जीवमण्डल में रडियोधर्मी आइसोटोप की मात्रा मे वृद्धि हो जाती है। इन उपोधर्मी आइसोटोपों में स्ट्राँशियम - 90, सीजियम - 137, आर्गन - 41, एवं आयोडीन - 131 आदि मुख्य पदार्थ होते हैं । स्ट्राँशियम - 90 का आघात पौधों व घास की पत्तियों पर धीरे-धीरे होता है और पौधों के माध्यम से यह पशुओं (गायों-भैसों) के उत्तकों एवं हड्डियों तक पहुँचता है तथा कुछ मात्रा में दूध में भी पहुँच जाता है और तब मनुष्य इस दूध का प्रयोग करते है तो यह स्ट्राँशियम - 90 दूध के साथ मनुष्य के शरीर में भी पहुँच जाता है । इसका प्रभाव अस्थि मज्जा पर पड़ता है जिससे रुधिर कैंसर एवं हड्डी कैंसर जैसे खतरनाक रोग उत्पन्न हो सक्ता है । यही नहीं दुधारू पशुओं के मल एवं मानव मल के साथ स्ट्राँशियम - 90 की कुछ मात्रा पुन: मिट्टी में चली जाती है और इस तरह अन्य चक्रों की तरह जीवन मण्डल में इसका चक्र भी जारी रहता है । इसी तरह सीजियम-137 सब्जियों के माध्यम से मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जनन अंगों सहित शरीर के विभिन्न अंगों में एकत्रित हो जाता है । इससे जीन्स प्रभावित होते हैं जिसका दुष्प्रभाव भविष्य में जन्म लेने वाले बच्चों पर पड़ सकता है । अणु शक्ति के प्रक्रम में कच्ची धातु तैयार करते समय आर्गन - 41, आयोडीन - 131, यूरेनियम तथा बेरिलियम के धूल कण वायुमण्डल में प्रवेश कर वायु में समाहित होकर वायु को दूषित करते हैं ।

वैज्ञानिकों के अनुसार भारी कणों द्वारा नि:सृत विकिरण अधिक खतरनाक होता है । 40 इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा वाला एक अकेला अल्फा करण ही शरीर में प्रवेश करने पर लगभग 1 लाख आयनित कण उत्पन्न कर सकता है । जिसके परिणामस्वरूप शरीर में विद्यमान जल अनेक तरह के कणों में टूट सकता है और यही अल्फा कण डी.एन.एन. को भी हानि पहुँचा सकता है । ऐसे विकिरण के प्रभाव से एक तरफ जहाँ जैविक कोशिकाएं, मृतप्राय हो जाती है, वही दूसरी तरफ इसके प्रभाव से जैविकगुणों के परिवर्तन होने का खतरा भी बढ़ जाता है । प्रारंभ में जब विकिरण का प्रभाव कम रहता है तो त्वचा का रंग लाल हो जाता है , किन्तु जब विकिरण का अधिक प्रभाव पड़ता है तो रक्त कैंसर अथवा हड्डी कैंसर होने का खतरा बढ़ जाता है। विकिरण के दुष्प्रभाव से यदा-कदा आनुवंशिकी गुणों में भी अन्तर आने लगता है, जिसका प्रभाव कई पीढ़ियों तक दृष्टिगोचर हो सकता है । अल्प विकिरण के प्रभाव से जब त्वचा कैंसर होता है तो इससे नष्ट होने वाली जैव कोशिकाओं के स्थान पर कुछ समय पश्चात् नयी कोशिकाएँ तैयार हो जाती है किन्तु जब विकिरण का अधिक प्रभाव होता है तो वह खून को प्रभावित करता है। इसके दुष्प्रभाव से गर्दन में गाँठ बनने से उत्पन्न बीमारियों के होने की संभावना बढ़ जाती है । नाभिकीय विखण्डन से प्राप्त आयोडीन से भी इस तरह की बीमारी का खतरा बढ़ जाता है । विकिरण के दुष्प्रभाव से आंत एवं फेफड़े से संबंधित रोग होने का भी खतरा बना रहता है । आई. जी. सायमनन्स के अनुसार आर्कटिक क्षेत्रों में सबसे अधिक नाभिकीय विस्फोट किए गए है जिससे टैगा एवं टुण्ड्रा क्षेत्रों के जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर प्रभाव अधिक है ।

वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर पर पड़ने वाले विकिरण का लगभग 78% प्राकृतिक कारणों से मिलता है । ऐसे विकिरण में लगभग 13% कॉस्मिक किरणें, 16% गामा किरणें एवं 33% रेडान होती है । उल्लेखनीय बात तो यह है कि नाभिकीय रिएक्टरों या आणविक परीक्षणों से उत्पन्न रेडियोधर्मिता प्राकृतिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न रेडियोधर्मिता से काफी कम पायी गयी है। सदैव दैनिक कार्यो से भी विकिरण का फैलाव होता रहता है । दैनिक कार्यो से उत्पन्न विकिरण का 21% विकिरण मात्र चिकित्सा में प्रयुक्त विकिरण नि:स्तृत करने वाली मशीनों से शरीर पर पड़ता है । प्राकृतिक रूप से नि:सृत रेडियोधर्मिता के कारण भी शरीर में विकिरण प्रवेश करता है, वायुमण्डल में सदैव कुछ न कुछ विकिरण विद्यमान रहता है । यदि मनुष्य अपने घर में रहता है तो भी कुछ न कुछ विकिरण उसके शरीर पर पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति ईंटों से निर्मित मकान में रहता है तो उस पर 50 से 100 मिली रैम (एक रैम से तात्पर्य एक जूल के 100 वें भाग कर बराबर ऊर्जा का 1 किलोग्राम भार द्वारा सोख लिया जाता है।) एवं कंक्रीट के मकान में रहने वाले व्यक्ति के शरीर पर 30 से 50 मिलीरैम विकिरण प्रति वर्ष पड़ता है । इसी प्रकार खान - पान एवं सांस लेने में 25 मिली रैम एवं एक्स-रे कराने में 120 मिली रैम विकिरण प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति के शरीर पर पड़ता है । विश्व के विभिन्न नगरों में मानव शरीर पर पड़ने वाले विकिरण की मात्रा में भी अन्तर मिलता है जैसे - पेरिस में प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति 120 मिली रैम एवं लन्दन में 100 मिली रैम विकिरण पड़ता है । अपने देश में केरल राज्य में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 400 मिली रैम विकिरण पड़ता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार प्राय: 20 मिली रैम तक विकिरण का प्रभाव अधिक खरतनाक नहीं होता है । किसी भी साधारण नागरिक के लिए किसी एक वर्ष में 500 मिली रैम विकिरण एवं उसके पूरे जीवन में औसत 100 मिली रैम से अधिक विकिरण

तालिका – 2

विश्व में नाभिकीय ऊर्जा गृहों की स्थिति

देश	जून 2003 तक कार्यरत ऊर्जा गृह		जून 2003 तक ऊर्जा गृह निर्माण		आणविक विद्युत ऊर्जा का उत्पादन, वर्ष 2003 में	
	ऊर्जा गृह की संख्या	क्षमता (MWCE)	ऊर्जा गृह की संख्या	क्षमता (MWCE)	$KWH \times 10^9$	आणविक ऊर्जा का प्रतिशत
अजेण्टीना	2	935	-	-	5.4	7.2
आर्मिनियो	1	376	-	-	2.1	41
बेल्जियम	7	5728	-	-	44.7	57
ब्राजील	2	1655	-	-	13.8	4
बुल्गारिया	6	3538	-	-	20.2	47
कनाडा	14	9998	6	3598	71.0	12
चीन	8	6002	3	2535	23.5	14
म० चकोस्लवाकिया	6	3472	-	-	18.7	25
फीनलैंड	4	2656	-	-	21.4	30
फ्रांस	59	63293	-	-	415.5	78
जर्मनी	19	21141	-	-	162.3	30
हंगरी	4	1755	-	-	17.8	36
भारत	14	2503	8	3728	17.8	3.7
ईरान	-	-	1	950	-	-
जापान	55	44153	3	3696	313.8	39
उ० कोरिया	-	-	1	950	-	-
गणतंत्र कोरिया	18	14870	2	1900	113.1	39
लघु वानिया	2	2370	-	-	12.9	80
मैक्सिको	2	1310	-	-	9.4	4.1
नीदरलैंड	1	452	-	-	3.7	4.0
पाकिस्तान	2	425	-	-	1.8	2.5
रोमारिया	1	655	9	655	5.1	11
रूस	30	20793	6	5575	130	15
गणतंत्र स्लेवाद	6	2472	-	-	18	65
स्लोविनिया	1	679	-	-	5.1	41
दक्षिण अफ्रीका	2	1842	-	-	12	5.9
स्पेन	9	7405	-	-	60.3	26.46
स्वीडेन	11	9460	-	-	65.6	46
स्वीजरलैंड	5	3170	-	-	25.7	40
ताईवान	6	4884	2	2600	33.9	21
ग्रेट ब्रिटेन	27	12082	-	-	81.1	22
युक्रेन	13	11195	2	1900	73.4	46
अमरिका	104	98523	-	-	780.1	20
योग	439	359992	35	28087	2574	16

स्रोत : जिज्ञासा पत्रिका, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली, पृ० 00.

शरीर पर नहीं पड़ना चाहिए। एक्सरे प्लाण्टों में कार्यरत लोगों पर किसी भी दशा में एक वर्ष में 5000 मिली रैम से अधिक विकिरण नही पड़ना चाहिए। जबकि अधिकांश क्षेत्रों में मानव के ऊपर विकिरण का प्रभाव मानक से काफी अधिक पड़ रहा है।

सबसे बड़ी विडंबना तो यह है कि नाभिकीय प्रदूषण का दुष्प्रभाव एक तरफ जहाँ तात्कालिक भयंकर होता है, वही दूसरी तरफ इसका दीर्घकालिक दुष्प्रभाव भी कम भयंकर नहीं होता है । दीर्घकालिक दुष्प्रभाव के चलते भविष्य में होने वाले बच्चे अंधे एवं अपंग होते है, प्रजननशीलता समाप्त हो जाती है। भूमि प्रदूषित हो जाती है, जल स्रोत प्रदूषित हो जाते है एवं दीर्घकाल में वायुमण्डल भी दूषित रहता है , क्योंकि विकिरण का विघटन आसानी से नहीं होता है और दीर्घकाल तक विद्यमान रहता है ।

नाभिकीय प्रदूषण से बचाव :

नाभिकीय प्रदूषण से बचाव करना एक अत्यन्त ही जटिल समस्या है । यही कारण है कि नाभिकीय ऊर्जा प्राप्ति के प्रारंभ से ही नाभिकीय अवशिष्ट राख को सुरक्षित नि:स्तारण वैज्ञानिकों के लिए चुनौती बना हुआ है । इसके दुष्प्रभाव से बचने के लिए परमाणु कचरे को कब्रगाह बनाकर उसमें उसे दफनाया जा रहा है, किन्तु वह भी सुरक्षित नही है, क्योंकि अंतत: इसे भूमि एवं जल प्रदूषण में वृद्धि होगी। यही कारण है कि नाभिकीय प्रदूषण को पर्यावरण एवं मानव जीवन के अस्तित्व से जुड़ी समस्याओं में से सबसे ज्वलन्त समस्या माना जा रहा है और विश्व समुदाय इसके प्रति चिन्तित है । इसी चिन्तन एवं जागरूकता के चलते ही सर्वप्रथम सन् 1963 में आंशिक परमाणु परीक्षण संधि पर विश्व के अनेक परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्रों एवं अन्य राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किये इस संधि के तहत जलमण्डल एवं वायुमण्डल में परमाण्विक विस्फोटों के परीक्षण पर रोक की बात कही गयी है, किन्तु रचनात्मक कार्यों हेतु भूमिगत परीक्षण पर रोक नही लगाई गयी है। इसके बाद 18 मई, 1967 को जिनेवा में एक परमाणु निरस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ, जिसमें अमरीका, रूस एवं ब्रिटेन द्वारा एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संधि का प्रारूप बनाया गया, जिसे अणु विहीन राष्ट्रों को आणविक परीक्षण से रोकने का प्रस्ताव किया गया। फलत: परमाणु शक्ति संपन्न इन राष्ट्रों की भेदभाव पूर्ण नीति के चलते भारत सहित अनेक देशों ने इस संधि को मानने से इन्कार कर दिया । किन्तु 12 जून 1968 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने इस संधि को अपना समर्थन प्रदान कर दिया । इस संधि के समर्थन में 92 देशों ने एवं विरोध में मात्र 4 देशों ने मत दिया ।

शेष भाग पृष्ठ 51 पर ....

पृष्ठ 7 का शेष भाग.....

पानी की आवश्यकता पड़ती है। यदि अतिक्रांतिक CO_2 के साथ डीटरजेंडट का उपयोग किया जाय तो पानी की आवश्यकता नहीं पड़ेगी तथा ऊर्जा की खपत में भारी कटौती संभव है।

विसंदूषण :

जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि अतिक्रांतिक CO_2 से रेडियोसक्रिय तत्त्वों का निष्कर्षण किया जा सकता है। विलायक निष्कर्षण प्रक्रिया में अत्यधिक तरल अपशिष्ट उत्पन्न होता है। जबकि अतिक्रांतिक CO_2 के उपयोग द्वारा न्यूनतम अपशिष्ट जनित होता है। रिएक्टर उपकरणों का विसंदूषण, विलायक निष्कर्षण प्रक्रिया द्वारा अति जटिल कार्य है। जटिल संरचना के कारण विलायक का अंदर तक पहुंच पाना संभव नहीं हो पाता। जबकि अतिक्रांतिक CO_2 आसानी से भीतर तक जाकर विसंदूषण करने में सक्षम है।

झिल्ली प्रक्रिया:

इसमें अतिक्रांतिक द्रव्यों के विशिष्ट गुणों जैसे कम श्यनता, अधिक निसरण तथा प्रवरण विलायक क्षमता का लाभ उठाया जाता है। नैनोनिथारन में उपयोगिता, विशेषत: उच्च श्यनता वाले तरल पदार्थों के लिए अतिक्रांतिक द्रव तथा झिल्ली के संयोग से विलेय-विलायक का पृथक्करण किया जाता है।

प्रदूषण उपशमन :

अतिक्रांतिक CO_2 का कार्बनिक विलायक के वैकल्पिक प्रयोग से कार्बनिक पदार्थों को पर्यावरण में उत्सर्जन में कमी की जा सकती है। कार्बनिक पदार्थों से प्रदूषित जल धाराओं का अतिक्रांतिक CO_2 उपचार से विलोपन संभव है। खतरनाक अपशिष्ट का अतिक्रांतिक पानी से पूर्णत: ऑक्सीकरण संभव है।

शुष्क सफाई :

इलेक्ट्रॉनिक सामान, प्लास्टिक, कपड़ों की सफाई के लिए अतिक्रांतिक द्रवों का प्रभावशाली तरीके से उपयोग किया जा सकता है। उन्नत विसरण गुणों के चलते अतिक्रांतिक द्रव छोटे छिद्रों वाले यंत्रों, नाजुक यंत्रों तथा छेददार पदार्थो से तेल, वसा, मोम तथा अन्य संदूषित पदार्थों को बिना किसी प्रकार का नुकसान पहुंचाये निकालने में सक्षम हैं।

टिप्पणियां

1. भाषा वृक्ष की प्राचीनता

किसी समय कभी केवल एक ही भाषा थी और शायद आज विश्व में बोली जाने वाली 6000 भाषाओं की उत्पत्ति उस एक भाषा से ही हुई होगी। यदि मानव भाषा के वंशवृक्ष का पुनर्निर्माण करना और इसकी शाखाओं की उत्पत्ति के काल का पता लगाना संभव हो जाए तो मानव के अतीत पर एक अद्भुत रोशनी डाली जा सकती है।

अनेक इतिहास विज्ञ भाषाविज्ञानियों के अनुसार ऐसे वंशवृक्ष तैयार करने की संभावना लगभग नहीं के बराबर है, किंतु जो समझते हैं कि वृक्ष तैयार किया जा सकता है, वे अभी तक तो एक भ्रांति का ही पीछा करते रहे है। भाषाएँ इतनी तेजी से बदलती हैं कि उनके वंश का कुछ हजार वर्षो तक पता चलने के बाद उनके संकेत समाप्त होने लगते हैं और आगे एक शोर जैसा भ्रम रह जाता है। प्रमाणस्वरूप कुछ सौ साल पहले का ही साहित्य पढ़कर देख लें, ये अत्यंत कठिन लगेंगी। फिर चाहे अंग्रेजी के चॉसर हों अथवा हिंदी के नाल्ह या चंदबरदाई.

भाषाविज्ञानियों की उपर्युक्त समस्या पर इन वर्षों में खोजकर्ताओं के नये वर्ग का ध्यान गया है और उनकी यह उम्मीद है कि वे सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यह वर्ग उन जीव विज्ञानियों का है, जिन्होने जीनों और जातियों का वंशवृक्ष तैयार करने के लिए एक जटिल गणितीय तकनीक का विकास किया है। चूँकि जीनों के वंशवृक्ष और भाषा के वंशवृक्ष के संबंध में समान प्रकार की समस्याएँ हैं, अत: इस वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस गणितीय तकनीक का लाभ भाषा-वृक्ष के पुनर्निर्माण में भी मिल सकेगा।

भाषाविज्ञान के क्षेत्र में जीवविज्ञानियों का नवीनतम कार्य है- भारोपीय भाषा वंशावली का पुनर्निर्माण। यह कार्य न्यूजीलंड के युनिवर्सिटी ऑफ ऑकलैंड के विकास-जीवनज्ञानी डॉ. रसेल डी. ग्रे द्वारा किया जा रहा है। वंशवृक्ष की एक प्रमुख शाखा में प्राचीन तुर्की की हत्ती या हिट्टाइट जैसी विलुप्त भाषाएँ, मध्य एशिया की कभी बोली जाने वाली तोखारी भाषा, भारतीय भाषाएँ तथा इरानी भाषा, तो दूसरी प्रमुख शाखा में बास्क भाषा छोडकर सभी यूरोपी भाषाएँ हैं।

ग्रे द्वारा किये गये कार्य के सही पाये जाने पर इसके परिणाम का प्रभाव पुरातत्व विज्ञान और भाषा विज्ञान दोनों पर पडेगा। ग्रे के वंशवृक्ष का आकार कोई आश्चर्य पैदा नहीं करता- यह भारोपीय भाषाओं को वैसा ही रखता है। जैसा कि भाषा विज्ञानियों ने तुलनात्मक विधि के अंतर्गत रखा है। किंतु ग्रे ने इस वंशवृक्ष में जो काल-निर्धारण किया है, वे अपेक्षित अधिक प्राचीन है। ग्रे की गणना से पता चलता है कि पैतृक पूर्व-भारोपीय भाषा 8700 वर्ष (1200 वर्ष कम अथवा अधिक) पहले विद्यमान थी, जो भाषा विज्ञानियों की गणना से अधिक प्राचीन है।

पूर्व-भारोपिय भाषा की आयु पर पुरातत्वीय विवाद रहा है। डॉ. मारिजा गिम्बुटाज (1994 में मृत्यु) के नेतृत्व में कार्य कर चुके खोजकर्ताओं का विश्वास है कि भारोपीय भाषाओं का विस्तार आज से 6000 वर्ष पूर्व के बाद रूसी मैदानों, उत्तरी ब्लैक व कैस्पियन सागरों के उन योध्दाओं द्वारा हुआ जिन्हें अपनी मातृभूमि से दूर-दूर तक जाना पड़ा।

इसके विरुध्द कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के शॉ. कॉलिन रेनफ्रू एक अलग सिद्धांत प्रस्तावित करते हैं। उनके अनुसार भारोपिय लोग प्राचीन तुर्की में रहने वाले प्रथम कृषक थे और उनकि भाषा का विस्तार आज से 8000-10000 वर्ष पहले युद्ध से नहीं बल्कि कृषि के विस्तारण के साथ हुआ।

यदि ग्रे के काल-निर्धारण को स्वीकार किया जाए तो रेनफ्रू के सिध्दांत को इससे समर्थन मिलेगा। किंतु कुछ भाषा विज्ञानियों का कहना है कि ग्रे का भाषा वृक्ष तो सही आकार में था, किंतु इससे उन्हें कोई नई जानकारी नहीं मिली, क्योंकि वे उनके काल-निर्धारण को सही नहीं मानते। काल-निर्धारण को सही मानने वालों में हावर्ड के भारोपिय भाषा विशेषज्ञ डॉ. जय जसनॉफ और डॉन रिंगे भी शामिल हैं।

जीव विज्ञानी अपनी गणितीय तकनीक से किये गये काल-निर्धारणा केप्रति आश्वस्त हैं। इनका कहना है कि भाषा-विज्ञानी आखिर इस बात को क्यों नहीं समझ पा रहे हैं कि उनके द्वारा विकसित नई तकनीक ने पुराने तरीके की कमियों को दरकिनार कर दिया है।

2. एशियाई भाषाओं का तेजी से विकास

''भाषाओं के भावी विकास'' पर किये जा रहे विश्लेषण और अध्ययन के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय संचार, प्राद्योगिक और जनसंख्या परिवर्तन के कारण विश्व की भाषा प्रणाली की पुनर्रचना हो रही है, जिससे नवभाषिक-विश्व व्यवस्था का प्रादुर्भाव हो रहा है। आकलन के अनुसार विश्व में बांग्ला ओर तमिल भाषाएँ सबसे तेजी से विकसित होने वाली भाषाएँ हैं एवं हिंदी व उर्दू द्वितीय सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में

अंग्रजी का स्थान लेने को तैयार हैं।

''द ओपन यूनिवर्सिटी, यू. के.'' के संकाय और ''द इंग्लिश कंपनी'' के निदेशक डेविड ग्रेडोल कहते हैं कि भविष्य में बहुभाषी होने की आवश्यकता बढ़ेगी, जिससे अंग्रजी की प्रमुखता समाप्त हो सकती है।

21 वीं सदी में हो रहे भाषिक परविर्तनों को देखते हुए 20 वीं सदी के अंत की सर्वोच्च दस भाषाएँ वर्ष 2050 केयुवा वर्ग के प्रयोग की दृष्टि से प्रतिनिधि भाषाएँ नहीं रहेगी। गत वर्ष पत्रिका ''साइन्स'' में प्रकाशित ग्रेडोल के विश्लेषण के अनुसार 20 वीं सदी के मध्य में विशव की जनसंख्या का 9% प्रथम भाषा के रूप में अंग्रेजी बोलते हुए विकसित हुआ। किंतु नये अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक यह प्रतिशत गिरकर 5% रह जाने की संभावाना है।

एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2050 तक 15 से 24 तक के उम्र-वर्ग के मातृभाषा के रूप में हिंदी या उर्दू का प्रयोग करने वालों की संख्या बढ़कर 73 मिलियन हो जायेगी। इसके समकक्ष अंग्रेजी बोलने वाले 6.5 करोड़ होंगे। वैसे आगामी दशकों में चीनी भाषा विश्व की सबसे बड़े भाषा का पद बनाए रखेगी, किंतु हिंदी, उर्दू और अरबी बोलने वाले युवाओं की संख्या बढ़ने से अंग्रजी का स्थान सर्वोच्च दस भाषाओं की सूची में नीचे की ओर जायेगा। ग्रेडोल के अनुसार सर्वाधिक तेजी से बढ़ने वाली भाषाओं में एशियाई भाषाएँ अग्रणी रहेंगी, जिनमें बांग्ला, तमिल और मलय भाषाएँ शामिल हैं।

भाषिक विकास के विश्लेषण से यह पता चलाता है कि आगामी 100 वर्षों में विश्व की 6000 जीवित भाषाओं में से 90% विलुप्त हो जायेंगी, किंतु इसके बदले बड़े नगरों में नई संकर (हाइब्रिड) भाषाओं का आविर्भाव होगा।

3. भाषा-परिवारों ने की यात्रा कृषि के साथ - साथ

भारोपीय भाषाओं की मातृभूमि का विस्तार डब्लिन से दिल्ली तक है। इनमें एक भाषा हदजा है, जो तंजानिया में लेक इयासी के निकट रहने वाले मात्र 1000 लोगों द्वारा बोली जाती है। आखिर विश्व की भाषाओं के वितरण के रूप में इतनी असमानता या विभिन्नता क्यों है ?

इस बात पर खोजकर्ताओं का मानना है कि इसका प्रमुख कारण वे घटनाएँ हैं, जो 10,000 वर्ष पहले से घटित होना शुरु हुई, जब फसल के लिए पौधों को विभिन्न क्षेत्रों में रोपा गया और जो वहाँ की जीवन व्यवस्था के अंग बने। भारोपीय भाषाओं के विस्तार और कृषि के अविष्कार व विस्तार का आपस में निकट का संबंध है। इस सिध्दांत का प्रयोग यूनिवर्सिटी ऑफ कॅलिफोर्निया, लॉस एंजेलिस एवं ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी, कैनबरा के खोजकर्ताओं द्वारा 15 भाषा-परिवारों के लिए किया गया है।

खोजकर्ताओं के अनुसार, जब मानव अपने जीवनयापन के लिये जानवरों का शिकार करता था या अन्य खाद्य सामग्री एकत्र करके लाता था, तब उनकी जनसंख्या कम थी। शिकारी-संग्रहकर्ताओं को हिंसक माहौल में रहना पडता था, जिसके कारण जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पाती थी। किंतु कृषि प्रणाली के अविर्भाव के साथ जनसंख्या बढ़ी, जिसने अपने आसपास के शिकारी-संग्रहकर्ताओं को विस्थापित करते हुए अपनी भाषा को कायम रखा। कृषक फसल उगाने के लिये जिन क्षेत्रों में पहुँचे, वहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा का विस्तार हुआ।

डॉ. पीटर बेलवुड (कैनबरा) कहते हैं कि यदि कृषकों ने उन शिकारी-संग्रहकर्ताओं के साथ संकरण भी किया जिनकी जमीन उन्होंने ली, तो उससे इनके जीनों (genes) का मिश्रण तो हुआ, पर भाषाओं का नहीं। अत: अनेक मामलों में शिकारी-संग्रहकर्ताओं में कृषकों की भाषा को अपनाया। यही कारण है कि भाषाएँ, जीनों की अपेक्षा अधिक स्पष्टता से, जनसांख्यिकी विस्तार की प्रक्रियाओं को दर्ज करती है।

ऐसे स्पष्ट विस्तार का सबसे बाद का उदाहरण विश्व के सबसे बड़े नीग्रो-कांगो या बांटू परिवार की 1,436 भाषाओं में देखा जा सकता है। लगभग 5000 वर्ष पहले पश्चिमी अफ्रिका के बांटू भाषा बोलने वाले और रतालू की खेती करने वाले लोग अपनी मातृभूमि से बाहर निकलने शुरू हुए। इनका एक वर्ग तो दक्षिण की और बढ़ा और दूसरा वर्ग पहले तो पूर्व के ग्रेट लेक्स की ओर बढ़ा और फिर दक्षिण की ओर दोनों देशांतर गमनों से बांटू भाषा महाद्वीप के एक तिहाई हिस्से में फैल गई और इसने खोईसन भाषा या क्लिक-भाषा बोलने वालें को विस्थापित किया, जो शिकारी-संग्रहकर्ता भी थे।

डॉ. बेलवुड और डॉ. जारेड डायमंड (लॉस एंजिलिस) द्वारा जारी आलेख में जापानी भाषा की उत्पत्ति के संबंध में जोरदार सुझाव शामिल है। लेखकों का कहना है कि यह भाषा धान उगाने माले कृषिको की भाषा से आविर्भूत हुई, जो 400 वर्ष ईसा पूर्व कोरिया से पहूँचे थे। उन्होने दक्षिणी व्दीप क्यूशू से कृषि का विस्तार उत्तर दिशा की ओर किया। आधुनिक जापानी भाषा कोरियाई भाषा की तरह नहीं है। दरअसल, कोरिया के तीन प्राचीन राज्य थे और इनमें से हर की एक भाषा थी। आधुनिक कोरियाई भाषा प्रचीन सिलन (Sillan) भाषा से आविर्भाव हुई

है। जापानी भाषा एक अन्य कोरियाई भाषा कोगुर्यो (Koguryo) से उत्पन्न हुई जान पड़ती है।

लेखकों के अनुसार जिस प्रकार चीनी भाषा पूर्वी क्षेत्र में एक नये भाषा-परिवारों का शक्ति केंद्र है। उसी प्रकार लबिनन से इराक तक तय होनेवाला चंद्र-घेरा पश्चिम में कम-से-कम तीन प्रमुख भाषा-परिवारों का स्रोत है। इनमें से एक द्रविड भाषा-परिवार है, जो अब दक्षिण भारत में केंद्र है। दूसरा भारोपीय भाषा-परिवार है। जिसकी पश्चिमी शाखाओं में अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मनी शामिल हैं और पूर्वी शाखाओं में इरानी और हिंदी शामिल हैं। तीसरा अफ्रो-एशियाटिक भाषा-परिवार हो सकता है। जिसमें प्राचीन मिस्त्री और अरबी व हिब्रू जैसी सामी (सेमाइटिक) भाषाएँ हैं। बेलवुड के अनुसार इन भाषाओं का विस्तार आवश्यक रूप से जनसांख्यिकी प्रक्रिया या दूसरे शब्दों में उपनिवेशन की प्रक्रियाओं से संचालित रही हैं।

डायमंड कहते हैं कि सभी भाषाओं का विस्तार कृषि के साथ नहीं हुआ है- आर्कटिक के आर पार इनूइट (Inuit) का विस्तार इसका उदाहरण है, किंतु अधिकांश बहुविस्तारित भाषा-परिवारों के विस्तार का स्रोत-शक्ति कृषि ही है।

- बालकृष्ण काबरा 'एतेश'

11, सूर्या अपार्टमेंट, रिंग रोड,

राणाप्रताप नगर, नागपुर (महाराष्ट्र) - 440 022.

4. भारतीय समाज में शाकाहारी खाद्य संस्कृति का इतिहास

हमारे विद्वान पूर्वजों (ऋषि-मुनियों) ने मानव-मनोविज्ञान का उच्चस्तरीय ज्ञान प्राप्त किया था। वे समझ चुके थे कि शाकाहारी व माँसाहारी भोजन, व्यक्तिगत रुचि व देश-काल अनुरूप उपलब्धता पर निर्भर करता है।

वैदिक काल में पूर्वज गाय तथा अन्य पशुओं का माँस खाते थे। डॉ. पांडुरंग वामन कणे (भारतरत्न -1963) ने अंग्रेजी भाषा में 'हिस्टरी ऑफ धर्मशास्त्र' नाम का एक विस्तृत तथा विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ के पूर्वार्ध में (46 वां अध्याय) 'भोजन' विषय की चर्चा है, जिसमें गोमांस तथा अन्य पशूओं के मांस का स्पष्ट उल्लेख है। पृष्ठ 285 में डॉ. कणे लिखते हैं- ''मांसभक्षण के बारे में प्राचीन इतिहास देखने पर यह ज्ञात होता है कि ऋग्वेद काल में बैल, बंध्या गाय, भेड, आदि पशू यज्ञ में बेल चढाये जाते थे। दूध देने वाली गायें, बलि चढाने के लिए अपात्र मानी जाती थी।''

अगले पृष्ठ में वे ज्यादा विस्तार से लिखते हैं- ''आर्यों का भारत के मध्य, पूर्व व दक्षिण भाग में प्रसार होने पर वहाँ की जलवायु के कारण अनाज, साग-सब्जियों व फलों की विपुलता के कारण मांसभक्षण अनावश्यक होने लगा।''

अन्य धर्मशास्त्र ग्रधों में भी अलग-अलग पशु तथा पक्षियों के संबंध में अनेक नियम बताए गये हैं। खरगोश, कछुआ, जैसे कुछ जीवों को छोड़कर, अन्य सभी पाँच नाखूनों वाले प्राणी निषिध्द माने गए हैं। कुछ में कहा गया है कि गाय-बैल का मांस खाने में कुछ हर्ज नहीं है, तो कहीं कहा गया है की उसे न खाएं। कहीं कहा गया है कि विशिष्ट अवसरों पर पशु-बलि दी जानी चाहिए, तो दूसरी ओर पढ़ने को मिलता है कि पशु-बलि कभी न चढाएं। आगे चल कर कहा गया है कि यज्ञ के दौरान पशु-हत्या न करें व मांसभक्षण करना छोड़ दे। ऐसा करने पर पुण्य-लाभ मिलता है। अर्थात मनुस्मृती काल में मांस-भक्षण का समर्थन व विरोध करने वाले लोग भारत में विद्यमान थे। इसलिए आज हमें यह कहने पर कोई सांकेच नहीं करना चाहिए कि 'हमारे पूर्वज गोमांस खाते थे।'

काशी के प्रसिध्द संस्कृत विद्वान आचार्य बलदेव उपाध्याय (पद्मभूषण-1984, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के भूतपूर्व निदेशक) ने 'वैदिक साहित्य और सस्कृती' नाम की एक पुस्तक लिखी है (1973)। इसके पश्चात् इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तक को वैदिक साहित्य, वैदिक संस्कृती तथा वैदिक व्याकरण के परिचायक- प्रमाणिक ग्रंथ की मान्यता प्राप्त है (कुल 478 पृष्ठ)

इस पुस्तक में आचार्य महोदय लिखते हैं-

1. ''वेद के तत्वों में आधुनिक विज्ञान से भी उदात्तर वैज्ञानिक सिध्दांतों का प्रतिपादन है। वेदार्थ की उपेक्षा करने के कारण ये तत्व हमारे लिए विस्मृतप्राय हो चुके हैं।'' - पृष्ठ 16 (इसकी विधिवत व्याख्या इस पूस्तक में प्रस्तुत की गयी है।)
2. ''वैदिक आर्यों के लिए कृषि-कर्म अतिरिक्त पशु-पालन जीवन निर्वाह का प्रधान साधन था। आर्यों के जीवन में गायों का विशेष स्थान इसी कारण है। बैलों से खेती का काम लिया जाता था। गाय का दूध आर्यों के भोजनालयों की एक प्रधान वस्तु थी। वैदिक काल में सिक्कों का प्रचलान बहुत कम था। अत: लेन-देन, व्यवहार-बंटा, क्रय-विक्रय के कार्य के लिए, विनमय का मुख्य माध्यम गाय ही थी। गाय के ही बदले में वस्तुएँ खरीदी जाती थी। पदार्थों का मूल्य गाय के ही रूप में विक्रेता को दिया जाता था। इस प्रकार खेती, भोजन तथा द्रव्य-विनमय का मुख्य

साधन होने के कारण गाय वैदिक आर्यों के लिए नितान्त उपादेय तथा आवश्यक पशु थी।'' - पृष्ठ 454

3. '' वैदिक काल में गाय के गौरव का रहस्य इसी समाजिक अवस्था की सत्ता में अन्तर्निहित है। इसी कारण वैदिक आर्यगण गाय को 'अहन्या' (न मारने योग्य) के नाम से पुकारते थे तथा उसे सर्वाधिक श्रद्धा एवं आदर की दृष्टि से देखते थे।'' - पृष्ठ 455

आर्यों द्वारा भोजन में मांस खाने के विषय में आचार्य महोदय ने पृष्ठ 438 में लिखा है -

'' उस समय आर्य लोग पतिपय जानवरों के मांस भी पकाकर खाते थे। सर्द मुल्क के रहने वालों के लिए मांस का भक्षण नितान्त आवश्यक हो जाता है। वैदिक काल में आर्यों की निवासभूमि का जलवायु अत्यन्त शीत प्रधान था, इसलिए 'वर्ष' की सूचना देने के लिय ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में 'हिम'(पाला, शीत) का प्रयोग किया गया है। अत : जलवायु की विशिष्टता पर ध्यान देनेवालों को यह जानकर आश्चर्य होगा की विषम ऋतु के प्रभाव से अपनी रक्षा के निमित्त आर्य लोग कभी-कभी घृतपक्व भोजन के साथ-साथ मांस का भी सेवन करते थे।''

मांस सेवन के अलावा, कई प्राचीन ग्रांथों (गृह सूत्र, तैत्रिय ब्रह्मण, अथर्वेद, गोपथ ब्राह्मण, आदि) में पशु बलि के दौरान '' विशिष्ट मंत्रों'' को ढते रहने के क्रिया निर्देश मिलते हैं। इसके साथ-साथ किस प्रकार से गाय/बछड़े/साँड का बध किया जाये व फिर उनके अंगों को काँटने-छांटने से लेकर गोमांस पकाने तक की विधियों का वर्णन भी इन ग्रंथों में उपलब्ध है।

आधुनिक विज्ञान भी हमें बताने लगा है कि यदि किसी पौधे के सामने सुरीले संगीत का प्रसारण नियमित रूप से किया जाए, तो वह पौधा शीघ्रता से विकास करता है। परन्तु कर्कश संगीत का उल्टा प्रभाव होता है। इसी क्रम में आधुनिक वैज्ञानिकों को '' ॐ'' मंत्र में समाये अद्‌भूत चमत्कारिक प्रभाव का ज्ञान हो चुका है और वे बताने लगे हैं कि इसके नियमित जाप से मानव शरीर में उमरने वाले कई रोगों के उपर अंकुश लगाया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार से, शायद मंत्रोचारण के प्रभाव (ध्वनिकंपन) में बलि चढाए जाने वाले पशु में भय का संचार न हो पाता हो या फिर संज्ञाहीनता (ऐनिस्थटिक)प्राप्त कर वह मृत्यु कष्ट से मुक्त हो जाता है। यह शोध का विषय है।

उच्चस्तरिय वैज्ञानिक ज्ञान से ओत-प्रोत, हमारे इन पूर्वजों को यह ज्ञान प्राप्त करने में भी देर नहीं लगी कि- '' भूखे पेट, होय न भजन गोपाला।'' इसलिए उन्होंने कृषि कर्म द्वारा समृध्दता प्राप्त करने की दिशा में प्रयोग किये होंगे। परिणामस्वरुप उन्होंने जैविक-कृषि संवर्धन की अनेकों पद्धतियों का विकास करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। वह भी ऐसी, जिसमें स्थानीय पर्यावरण को यथावत् बनाए रखते हुए कृषि उत्पादन को गतिमान रखा जा सके। तब जाकर उन्हें भारतीय गोवंश के पंचगव्य (गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, घी) में प्राकृतिक रुप से स्थापित चमत्कारिक जैव-प्रजनन/उपचारिक गुणों का विज्ञान -संगीत सर्वभौम उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त हुआ, चाहे वह जैव-कृषि विकास की बात हो, या जैव-औषध (आयुर्वेद) के रुप में हो, अथवा स्थानीय स्तर पर प्रदुषण-नियंत्रण के लिए हवन-यज्ञ जैसी जैव-प्राद्योगिकी का विकास क्यों न हो। इस प्रकार की जैव-प्राघौगिकीयों से हमारे ग्रंथ भरे पड़ेहैं। जागृत विज्ञान आधारित होने के कारण ये आज भी सत्य है। पिछले दो दशकों से कई भारतीय स्वयंसेवी संस्थानों ने इन्हें वास्तविक रूप में अपनाते हुए, भारत के विभिन्न प्रान्तों में सफल आर्थिक प्रदर्शन कर दिखाना प्रारंभ कर दिया है।

इस प्रकार का ज्ञान-अर्जन करने पर हमारे विद्वान पूर्वजों ने भारतीय गोवंश को संपूर्ण संरक्षण प्रदान करने के लिए, अपने सभी ग्रंथों में इस अद्‌भुत जीव में प्राकृतिक रूप से अंगभूत मानव स्वास्थ्यवर्धक व आर्थिक रूप में उपयोगी-उत्कृष्ट लाभदायक गुणों की अनेकों रूप में स्तुति करते हुए, भारतीय समाज में चेतना जागृत की कि गोधन ''अहन्या'' है।

आधुनिक व्यवसायिक प्रचार भाषा में कहें, तो यह समझा जा सकता है कि मनीषी समझ चुके थे कि भारतीय गोधन में ''सचिन तेंदुलकर'' से भी कहीं अधिक हरफनमौला गुण विद्यमान हैं।

इसलिए भारत में गो-हत्या-निषेध परंपरा, 10 कमाडेंट्स के समान कोई धार्मिक आदेश नहीं है (thou shalts and the thou shlts nots)। यह परंपरा तो प्रकृति के आशीर्वाद से भारत में उपलब्ध, एक पर्यावरण संगत व आधारभूत जैव-ऊर्जा स्त्रोत को संरक्षण प्रदान करने के समाजिक आचारण से उभरी आर्थिक व्यवस्था का आदर्श स्वरुप है।

परन्तु यह कोई महत्वपूर्ण विषय नहीं है कि ''हमारे पूर्वज गोमांस भक्षण करते थे या नहीं।'' महत्व की बात तो है कि भारत में धूप समृध्दता, उपजाऊ कृषि भूमि, जलभंडारों की प्रचुरता, भरपूर जैव विविधता, आदि प्राकृतिक रूप में विद्यमान होने का ज्ञान व उनके सदुपयोग की उत्कृष्ट विधियां विकसित कर, किसने भारत को कुछ ही दूर अतीत में ''सोने की चिड़िया'' जैसी प्रतिष्ठा दिलायी थी। इसका संपूर्ण श्रेय हमारे विद्वान पूर्वजों को जाता है।

धीरे-धीरे, वैज्ञानिक शोध व अनुभव वृध्दि के साथ हमारे पूर्वजों ने गोधन पंचगव्य आधारित कृषि विज्ञान में सुविज्ञता प्राप्त करनी आरंभ की थी। इस उन्नत कृषि कर्म के फलस्वरुप भारत के भीतर अनाज, साग-सब्जियों फलों का उत्पादन बढने लगा। फिर उन्हें यह ज्ञान भी हो चुका था कि प्राकृतिक विधान के अंतर्गत, मनुष्य के लिए शाकाहारी भोजन ही उत्तम है। मानव दाँतों की संरचना कुछ इस प्रकार है कि वह प्राकृतिक रूप में अनाज, सब्जी व फलों का सेवन करते हुए विकास कर सके। इसके लिए प्रकृति ने मानव मुख की लार (सॅलाइवा) में क्षरीय (एल्कालाइन) क्षमता-युक्त सूक्ष्म-जीवाणु अधिक मात्रा में प्रदान किए हैं (मांसभक्षी जीवों की लार में एसिडिक जीवाणुओं की अधिकता)। इसलिए यह दृष्टव्य है कि शाकाहारियों की अपेक्षा, मांसाहारी भोजन करने वालों के दाँत कम उम्र में ही खराब होने लगते हैं।

इस प्रकार के ज्ञानवर्धन के प्रभाव में भारतीय समाज के भीतर ''शाकाहरी खाद्य-संस्कृती'' विकसित हुई और उसी प्रमाण में मांसाहार कम होता चला गया।

– शिवेंद्र कुमार पांडे,
द्वि निकुंज, बॉस बंगलो कमपाउन्ड,
चौथी क्रासिंग, राँची रोड,
पुरुलिया – 723 101.

5. प्रदूषण से हो रहा है जलवायु परिवर्तन

आज भूमण्डल के समक्ष पारिस्थितिक असंतुलन का भयावह संकट उत्पन्न हो गया है। भूमण्डलीय स्तर पर अनियोजित नगरीकरण, उपभोक्तावाद एवं औद्योगिकीरण से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ने और जंगलो की अनियंत्रित कटाई के कारण जलवायु में व्यापक परिवर्तन होने से प्राकृतिक आपदाएं कहर ढा रही हैं। कहीं ये सुनामी के नाम से आती है और कहीं कैटरीना, रीटा, बीटा के नाम से। कभी बाढ़ के रूप में, कभी भूकम्प-भूस्खलन के रूप में और कभी सूखा के रूप में इनकी विनाश लीला दिखायी पड़ जाती है। विभिन्न उद्योगों और वाहनों से उत्सर्जित ग्रीनहाउस गैसों (मीथेन, कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाईऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, नाइट्रिक ऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन आदि) की पर्त पृथ्वी से निकलने वाले विकिरण को वायुमण्डल में रोक लेती है और उसे बाहर नहीं निकलने देती। इससे भूमण्डल का तापमान बढ़ रहा है और मौसम में परिवर्तन होने लगा है। इस कारण कृषि उपज पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है और अनेक घातक रोग फैल रहे हैं। उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों की बर्फ और अनेक हिमखण्ड पिघल रहे हैं। महासागरों का जलस्तर बढ़ रहा है और कालक्रम में तटवर्ती क्षेत्रों को मिल जायेगा। मौसम चक्र बुरी तरह प्रभावित होगा और जलवायु से सम्बन्धित भयावह परिवर्तन होंगे। इनसे कृषि उपज समेत विशाल प्राकृतिक सम्पदा का विनाश होगा और अनेक जीवों की अनेक प्रजातियां लुप्त हो जायेंगी।

इस संकट से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक हो गया है। प्रदूषण में कमी लाने के लिए स्वच्छ विकास प्रौद्योगिकी आवश्यक हो गयी है। भूमण्डलीय तापमान पर नियंत्रण के लिए हुई क्योतो संधि के अनुसार पर्यावरण को प्रदूषित करने वाली ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन की सीमा सभी देशों को निश्चित कर देनी चाहिए और उत्सर्जन को चरणों में कम किया जाना चाहिए। सन् २०१२ में इस संधि के समाप्त होने पर ऐसी नयी पर्यावरण संधि की आवश्यकता है जो सभी देशों को समान सुविधायें दे सके और सभी पर न्यायसंगत अंकुश लगा सके। विकासशील देशों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में ढील लाये बिना सस्ती और प्रदूषणमुक्त ऊर्जा उत्पन्न करने वाली तकनीक उपलब्ध होनी चाहिए। संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्थापित अन्तर्सरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल ने जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम या मन्द करने के उपाय सुझाये है। सभी देशों को जलवायु परिवर्तन की आपदा पर रोक लगाने के लिए उपयुक्त नीतियों का नियोजन एवं कार्यान्वयन करना चाहिए।

सर्वाधिक प्रदूषण फैलाने वाले देशों में अपने देश का स्थान तीसरा है। प्रदूषण के कारण उत्तरी क्षेत्र में पर्यावरण की स्थिति अत्यधिक खतरनाक हो गयी है। गंगा घाटी क्षेत्र समेत उत्तरी भारत के वायुमण्डल के ऊपर ओजोन पर्त में घातक क्षरण हो रहा है। मैदानी क्षेत्रों में कोहरा भी प्रदूषित हो रहा है। इसमें इतने अधिक प्रदूषक पदार्थ पाये गये हैं कि सूर्य के प्रकाश और पृथ्वी के बीच प्रदूषित कोहरे की दीवार सी बन जाती है। भारतीय उपमहाद्वीप के ऊपर औद्योगिक कचरे, धुएं एवं अन्य प्रदूषकों की मात्रा बहुत अधिक बढ़ गयी है और इसकी सर्वाधिक चपेट में बिहार है। कुछ क्षेत्रों में सर्दी के मौसम में भयंकर ठंड, गर्मी में प्रचण्ड लू, बरसात में भयावह बाढ़ और मैदानी क्षेत्रों में सूखा की विकराल समस्या बढ़ रही है। समुद्र का जलस्तर बढ़ने से तटीय प्रदेशों पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, महाराष्ट्र, केरल और तमिलनाडु के कुछ क्षेत्रों के डूब जाने की आशंका है। हिमखण्ड पिघलने से पेयजल व अन्य कार्यो में काम आने वाले जल की मात्रा कम हो जायेगी जिससे भूगर्भीय जल का दोहन बढ़ेगा। सिंचाई व अन्य कार्यो के लिए प्रयुक्त धरातलीय जल में कमी हो जाने से विभिन्न क्षेत्रों-प्रदेशों में तनाव बढ़ने की आशंका है।

मौसम परिवर्तन से उत्पन्न सूखा व बाढ़ से कृषि उत्पादन में कमी हो जायेगी।

अपने देश में प्रदूषण नियंत्रण और पर्यावरण संरक्षण के लिए पूरी गम्भीरता और दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ तत्काल कार्यवाही आवश्क है। एक, जन साधारण में जलवायु परिवर्तन के प्रति जागरुकता फैलायी जाय। दो, घरेलू प्रदूषण की रोकथाम के लिए विद्युत उपकरणों और उपभोक्ता सामग्री का नियंत्रित उपयोग हो। तीन,घरेलु, चिकित्सीय और औद्योगिक कचरा के निस्तारण की प्रभावी व्यवस्था हो। चार, प्लास्टिक थैलियों की बजाय दीर्घ काल तक उपयोगी थैलो का उपयोग हो। पाँच, एक बार प्रयुक्त वस्तुओं को फिर से उपयोगी बनाने की नीतियों का कार्यान्वयन हो। छः, रासायनिक उर्वरकों की बजाय प्राकृतिक खादों का प्रयोग हो। सात, निजी वाहनों से प्रदूषण को कम करने के लिए लोक परिवहन प्रणाली विकसित हो। आठ, विद्युत के विकल्प के रुप में सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा का प्रयोग बढ़े। नौ, प्रदूषण नियंत्रण और वृक्षारोपण की नीतियों का नियोजन एवं कार्यान्वयन हो। दस, उद्योगों और वाहनों में कोयला, तेल एवं विद्युत की खपत कम करने वाली प्रौद्योगिकी का विकास हो। ग्यारह, दण्डात्मक अधिकार सम्पन्न राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षरण आयोग की स्थापना हो।

डॉ. कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी
157 बाघम्बरी योजना
इलाहाबाद-211 006.

6. उत्तरांचल में सुगंधित पादपों से आर्थिक समृद्धि

धार्मिक रूप से महत्वपूर्ण माने जाने वाले एवं प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण राज्य उत्तराखंड में सुगन्ध एवं औषधीय पादप संपदाओं का अकूट भण्डार है उत्तराखण्ड सरकार ने सगन्ध फसलों के प्रस्करण को थ्रस्ट उद्योग में रखा है । तथा इस हेतु 10 वर्षों तक शत प्रतिशत एक्साईज में छूट एवं अन्य कई प्रकार की छूट एवं अन्य प्रयासों से इसे एक विशिष्ट उद्योग के रूप में विकसित करने के प्रयास जारी हैं। उत्तराखंड में मिलने वाले कुछ पादप जो सगन्ध फसलों के रूप में आर्थिक समृद्धि हेतु उपयुक्त हैं।

इनमें लैमन घास, जामारोजा, जिरेनियम, केमोमिल, पचौली, तुलसी एवं गुलाब काफी महत्व के हैं। लैमन घास साधारणत: नीबू घास के नाम से जाना जाता है। वानस्पतिक भाषा में ''सिंबोपोगोन फलेक्सओसस'' कहते हैं। यह एक बहुवर्षीय फसल है तथा एक बार बुवाई करने के बाद 5 वर्ष तक फसल की प्राप्ति हो सकती है। इसमें पशुओं के चरने एवं खरपतवार की समस्या कम होने एवं बाजार में लगातार मांग एवं अच्छे दाम होने के कारण इसकी खेती पारंपारिक फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी है। इसकी खेती बेकार एवं ढलान वाली भूमियों में भी संभव है तथा भूमि कटाव रोकने हेतु यह एक उपयुक्त फसल है।

लैमन घास की प्रजातियां यथा ''प्रगति'', ''प्रमान'', ''कृष्णा'', ''कावेरी'' तथा सी.के.पी.-25, व्यवसायिक खेती हेतु उपयुक्त मानी गई है। इसमें ''सिंट्रल'' नामक रासायनिक अवयव 75 से 80 प्रतिशत तक मिलता है। इसके तेल का उपयोग इत्र, सौन्दर्य प्रसाधन, साबुन, विटामिन-ए-आदि बनाने में किया जाता है।

इसकी खेती हेतु समुचित जल निकास वाली रेतीली दोमट से अनउपजाऊ लेटराईट (Latertite) ऊसर एवं क्षारीय तथा ढलान वाली भूमियों में की जा सकती है। इस हेतु उष्ण एवं उपोष्ण, उच्च आर्द्रता वाली जलवायु उपयुक्त है। इसका प्रवर्धन, वानस्पतिक स्लिप्स को 60 x 45 सें. मी. के अन्तराल पर फरवरी-मार्च एवं जुलाई से अक्टूबर में रोपण करना चाहिए। इसकी खेती हेतु 10 से 15 टन गोबर की खाद, नत्रजन 200 किग्रा. फास्फोरस 80 किग्रा. एवं पोटेशियम 60 किग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष की आवश्यकता पड़ती है। इस फसल की अवधि 4-5 वर्ष है तथा इस हेतु 8-10 सिंचाई प्रति वर्ष उचित रहती है। इसकी प्रथम कटाई रोपण-के 4-5 माह बाद एवं अगली कटाई हर 3 माह के अन्तराल पर (प्रतिवर्ष 4-5 कटाई) करना उपयुक्त रहता है। इससे हरा शाकीय भाग 400 क्विंटल / हैक्टैयर / वर्ष तथा आसवन से तेल की उपज लगभग 200 किग्रा. / हैक्टैयर / वर्ष तक प्राप्त हो सकता है।

इसकी खेती हेतु कृषि कार्य पर लगभग 27,000 रुपये प्रति हैक्टैयर / वर्ष की लागत आती है जबकि आय (तेल की औसत दर 350 रुपये / किग्रा. के आधार पर) लगभग 70.000 रुपये प्रति / हैक्टैयर / वर्ष होती है। इस प्रकार शुध्द लाभ लगभग 43000 रुपये / हैक्टैयर / वर्ष तक प्राप्त हो सकता है।

जामारोजा की वानस्पतिक भाषा में ''सिंबोपोगान नारडस'' कहा जाता है। इसकी किस्में RRL-82 एवं CN-5 व्यापारिक खेती हेतु महत्वपूर्ण मानी गयी है। इसका प्रमुख उपयोगी तत्त्व जिरेनियाल है जो 65 से 70 प्रतिशत तक पाया जाता है। जामारोजा की फसल खाली खेतों एवं बेकार भूमियों में आसानी से उगाई जा सकती है। यह विशेष रूप से वन क्षेत्रों के आसपास के क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी गयी है। पशु नहीं चरते हैं तथा एक बार रोपाई के उपरांत इससे 4 वर्षों तक फसल की प्राप्ति हो

सकती है। इसके तेल का प्रयोग मुख्ततया साबुन, परफयूमरी तथा सौन्दर्य प्रसाधनों में किया जाता है। इसकी खेती हेतु समुचित जल निकासवाली रेतीली दोमट एवं चिकनी दोमट भूमि उपयुक्त होती है । इसकी खेती हेतु उच्च आर्द्रता एवं उष्ण / उपोष्ण जलवायु उपयुक्त रहती है। इसका प्रवर्धन वानस्पतिक स्लिपस द्वारा किया जाता है। इस हेतु 45 x 30 सेमी. की दूरी पर फरवरी - मार्च अथवा जुलाई से अगस्त तक रोपण किया जाता है। अच्छी उपज हेत 10/15 टन गोबर की खाद, नत्रजन 200 किग्रा. फॉस्फोरस 80 किग्रा. तथा पोटेशियम खाद 75 किग्रा. प्रति हैक्टैयर प्रति वर्ष देना उपयुक्त रहता है। प्रति वर्ष लगभग 10-12 सिंचाई करने पर उपज में वृद्धि होती है। इसे प्रति वर्ष 3-4 बार काटा जा सकता है तथा जलवाष्प से आसवन कर रसायन प्राप्त किया जाता है। इससे 300 क्विंटल प्रति हैक्टैयर प्रति वर्ष का शाकीय भाग प्राप्त होता है तथा तेल उपज 150 किग्रा/ हैक्टैयर प्रतिवर्ष प्राप्त होता है। इसकी खेती में कृषि कार्यों पर व्यय लगभग 16,000 रुपये प्रति हैक्टैयर प्रति वर्ष आता है जबकि आय लगभग 48,750 रुपये प्रति हैक्टैयर प्रति वर्ष प्राप्त होती है। इस प्रकार शुध्द लाभ 32,750 रुपये / हैक्टैयर / वर्ष प्राप्त होता है।

जावा घास को सिट्रोनेला, जावा घास आदि नामों से जाना या पुकारा जाता हैं । इसे वानस्पतिक भाषा में ''सिंबोपोगोन विन्टरिएनस'' कहते हैं। इसकी एक बार रोपाई के बाद चार वर्ष तक फसल प्राप्त हो सकती है तथा इस प्रकार इस बहुवर्षीय फसल की प्रति वर्ष बुआई नहीं करनी पड़ती है। इसमें खरपतवार की समस्या कम होती है तथा पशुओं के चरने की समस्या नहीं होती है। जावा घास की बाजार में निरन्तर मांग एवं अच्छे दाम के कारण यह पारंपरिक फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी है। जावा घास की मन्दाकनी, मन्जरी, जौर लैब, सी-2, बायो-13, जलपल्लवी आदि किस्में व्यापारिक महत्त्व की हैं। इसमें पाये जाने वाले प्रमुख रासायनिक अवयव इस प्रकार हैं। 1. सिट्रोनिलाल (12-24 प्रतिशत), 2. जिरेनिआल (12-24 प्रतिशत), 3. सिट्रोनिलाल (25-45 प्रतिशत), इसका तेल, साबुन, डिर्टर्जेंट, सौन्दर्य प्रसाधन, मच्छर भगाने एवं परफ्यूमरी आदि के फ्रेगरेन्स फॉर्मुलेशन में प्रयुक्त होता है। इसकी खेती समुचित जल निकास वाली रेतीली दोमट से चिकनी मिट्टी में की जाती है तथा उष्ण एवं उपोष्ण उच्च आर्द्रता वाली जलवायु इस हेतु उपयुक्त रहती है। इसका प्रवर्धन वानस्पतिक स्लिप्स द्वारा फरवरी-मार्च अथवा जुलाई से अक्टूबर तक रोपण द्वारा किया जाता है। इन स्लिप्स को 60 x 45 सेमी. की दूरी पर फरवरी-मार्च अथवा जुलाई से अक्टूबर तक रोपण करना चाहिए। यह 4-5 वर्ष तक चलने वाली फसल है अत: 10-15 टन गोबर की खाद, नत्रजन 200 किग्रा. फॉस्फोरस खाद 80 किग्रा एवं पोटाश खाद 75 किग्रा / हैक्टैयर / वर्ष डालना उचित रहता है। इसकी उपज हेतु 10-12 सिंचाई प्रतिवर्ष करना उपयुक्त रहता है। इसकी फसल की पहली कटाई 6 माह बाद एवं अगली कटाई 4 माह के अंतराल पर कर कटाई 3-4 प्रतिवर्ष प्राप्त की जा सकती है। इसकी औसत उपज हरे शाकीय भाग के रूप में 250 क्विंटल / हैक्टैयर / वर्ष तथा तेल उपज (आसवन द्वारा) 220 किग्रा / हैक्टैयर / प्रतिवर्ष तक प्राप्त हो सकती है। इसकी खेती में कृषि कार्यों पर व्यय लगभग 25,000 रुपये / हैक्टैयर / प्रतिवर्ष आता है जबकि इसके तेल की औसत दर 325 प्रति किग्रा. के अनुसार आय लगभग 71,500 रुपये / हैक्टैयर / प्रतिवर्ष तक हो सकती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ 46,500 रुपये / हैक्टैयर / वर्ष प्राप्त होता है।

जिरेनियम को साधारण भाषा में गुलाब-जिरोनियम या सुगंधित जिरेनियम कहते हैं। वानस्पतिक भाषा में इसे ''पेलारगोनियम ग्रेबियोलेन्स (Pelargonium Graveolens) कहते हैं। यह पहाड़ी क्षेत्रों के लिए सफल एवं अन्य पहाड़ी फसलों की अपेक्षा अधिक लाभकारी मानी जाती है। यद्यपि मैदानी क्षेत्रों में इसकी फसल से दो कटाई प्राप्त की जा सकती है। इसे गुलाब तेल का प्रतिस्थापी माना जाता है तथा इसी कारण बाजार में इस तेल की मांग लगातार बनी रहती है। इसे पशु नहीं चरते हैं तथा कम पानी वाले क्षेत्रों में इसकी खेती की जा सकती है। इसे ढ़लान वाले क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है। पहाड़ी क्षेत्रों में पारंपारिक फसलों की अपेक्षा अधिक लाभकारी है। इसकी मुख्य प्रजातियां बोरबोन, एलजीरियन, हिम-पवन टाईप आदि उपयुक्त मानी गई है। इसमें सिट्रोनिलाल (20-35 प्रतिशत) एवं जिरेनियाल (6.45 से 18.5 प्रतिशत) तक रसायन पाये जाते हैं। इसके तेल का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधनों, साबुन, फार्मास्युटिकल्स, सुगंध-उद्योग एवं एरोमाथिरेपी आदि में होता है। इसे उचित निकास वाली भुरभुरी, हल्की अम्लीय भूमि एवं साधारण भूमि वाली समतल, ढालू एवं पहाड़ी नालियों वाली भूमि में उगाया जा सकता है। यह फसल शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु हेतु उपयुक्त है जबकि उच्च ताप एवं आर्द्रता के प्रति संवेदनशील मानी जाती है। इसे मैदानी क्षेत्रों में एक वर्षीय फसल के रूप में फरवरी से जून तक उगाया जा सकता है जबकि पर्वतीय क्षेत्रों में यह बहुवर्षीय फसल के रूप में उगाई जाती है। इसकी खेती हेतु 10-15 टन गोबर की खाद, नत्रजन 160 किग्रा., फॉस्फोरस खाद 40 किग्रा. एवं पोटाश खाद 40 किग्रा / हैक्टैयर / वर्ष भूमि में मिलाना उपयुक्त रहता है। इसकी अच्छी उपज हेतु 6-8 सिंचाई प्रतिवर्ष करना उपयुक्त रहता है। इसकी उपज हेतु प्रथम कटाई रोपण के 4-5 माह बाद एवं उसके बाद 3 माह के अंतराल

पर अगली कटाई की जाती है। फिर शाकीय भाग के जलवाष्प द्वारा आसवन कर तेल प्राप्त किया जाता है। इसकी खेती द्वारा 250 क्विंटल / हैक्टैयर / वर्ष तक शाकीय भाग एवं 25 किग्रा. प्रति हैक्टैयर / वर्ष तक तेल प्राप्त किया जा सकता है। इसके कृषि कार्यों पर लागत लगभग 40,000 रुपये प्रति हैक्टैयर प्रतिवर्ष आती है जबकि इसके तेल की औसत दर 3,200 रुपये प्रति किग्रा. के हिसाब से आय 80,000 रुपये प्राप्त होती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ लगभग 40,000 रुपये प्रति हैक्टैयर प्रति वर्ष तक प्राप्त किया जा सकता है।

कैमोमिल इसे साधारण : मैट्रीकेरिया के नाम से भी जाना जाता है। वानस्पतिक भाषा में इसे ''मैट्रीकेरिया कैमोमिल (Matricaria Chamomilla) भी कहा जाता है। इसकी प्रजातियां जर्मन टाइप एवं बल्लरी व्यापारिक महत्व की मानी गई हैं। यह पहाड़ों के ढ़लान वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है तथा फसल अवधि कम होने, प्रोसेसिंग की आवश्यकता नहीं होने, सूखे फूलों का बाजार उपलब्ध होने, कम लागत एवं पशुओं द्वारा चरने की समस्या न होने से इसे लाभकारी फसल माना जाता है। इसमें एजुलीन एवं ''अल्फा बिसाबेलोल'' रसायन पाये जाते है जिनका उपयोग (तेल के रूप में) महंगे इत्रों एवं औषधियों के निर्माण में किया जाता है। इसकी खेती क्ले मिट्टी की प्रचुरता वाली एवं जलधारण क्षमता अधिक होने वाली भूमि में करना उपयुक्त माना गया है। यह शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु के लिए उपयुक्त फसल है। इसे बीज द्वारा सीधे खेत में या पौधशाला में तैयार कर इसका प्रवर्धन किया जाता है। बीज द्वारा सीधे बुवाई करने हेतु 2-1.2/3 किग्रा. बीज प्रति हैक्टैयर एवं नर्सरी द्वारा उगाने पर 1 किग्रा. बीज प्रति हैक्टैयर की आवश्यकता होती है। इसकी खेती हेतु 4-6 सिंचाई (6 माह की फसल अवधि के दौरान) करना उपयुक्त रहता है। रोपण के 2 माह पश्चात् फूलों के पूर्ण विकसित होने पर तोड़कर छाया में सुखाया जाता है जिसे वाष्प आसवन कर तेल प्राप्त किया जाता है। इससे औसतन 40-50 क्विंटल प्रति हैक्टैयर ताजा फूल अथवा 8-10 क्विंटल प्रति हैक्टैयर सूखा फूल मिलता है जिसके आसवन से 5 किग्रा. तेल प्रति हैक्टैयर प्राप्त हो सकता है। इसकी खेती में कृषि कार्यों पर व्यय लगभग 27,000 रुपये प्रति हैक्टैयर आता है जबकि तेल दर 12,000 रुपये प्रति किलोग्राम के आधार पर आय लगभग 60,000 रुपये प्रति हैक्टैयर प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार शुध्द लाभ 33,000 रुपये हैक्टैयर प्राप्त हो सकता है।

पचौली वानस्पतिक भाषा में ''पोगीस्टीमोन पचौली''(Pogostemon Patchouli) कहते हैं। इसकी मुख्य व्यापारिक महत्त्व की प्रजातियां जौहर, इण्डोनेशियन टाइप हैं। इसमें **एल्फा एवं बीटा पचौलीन** (35-40 प्रतिशत) तथा पचौलोल (40-45 प्रतिशत) पाये जाते हैं। यह एक बहुवर्षीय फसल है। अत: एक बार बुआई करने के बाद 4 वर्ष तक फसल प्राप्त की जा सकती है। छायादार खेती हेतु यह उत्तम फसल है। इसे पशु नहीं चरते हैं तथा बाजार में निरन्तर मांग एवं अच्छे दाम होने के कारण पारंपरिक फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी माना जाता है। इसके तेल का उपयोग इत्र निर्माण, सौन्दर्य प्रसाधन एवं खुशबुओं के मिश्रण में किया जाता है। पचौली की खेती हेतु छायादार एवं समुचित जल निकास वाली दोमट, मटियार दोमट एवं बलुई दोमट मिट्टी इस 4 वर्षीय फसल हेतु 10-15 टन गोबर की खाद, नत्रजन किग्रा. फॉस्फोरस 60 किग्रा. एवं पोटाश खाद 50 किग्रा. प्रति हैक्टैयर प्रति वर्ष भूमि में मिलाना उपयुक्त रहता है। प्रति वर्ष 10-12 सिंचाई से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। इसकी प्रथम कटाई पौध रोपण के 5 से 6 माह बाद एवं प्रत्येक अगली कटाई चार माह के अंतराल में की जाती है। इससे 20-25 क्विंटल प्रति हैक्टैयर प्रति वर्ष सूखी पत्तियां प्राप्त हो सकती हैं जिसके वाष्प आसवन द्वारा 40 से 50 किग्रा / हैक्टैयर प्रति वर्ष तेल प्राप्त किया जा सकता है।

इसकी खेती पर कृषि कार्यों में 38,000 लगभग रुपये प्रति हैक्टैयर प्रति वर्ष लागत आती है जबकि तेल की बाजार दर 2,500 रुपये प्रति किलोग्राम के आधार पर आय लगभग 95,000 रुपये प्रति हैक्टैयर प्रतिवर्ष प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ लगभग 57,000 रुपये प्रति हैक्टैयर प्रतिवर्ष प्राप्त हो सकता है।

गुलाब या डैमेस्क गुलाब को वानस्पतिक भाषा में ''रोजा डेमेसिना'' के नाम से जाना जाता है। इसकी प्रमुख प्रजातियां ''नूरजहां'', ''ज्वाला'', ''हिमरोज'', ''रानी साहिबा'' व्यापारिक महत्व की हैं। यह बहुवर्षीय (10-15 वर्षों तक फसल प्राप्ति) फसल है। अत: प्रत्येक वर्ष बुआई से छुटकारा मिल जाता है। यह पहाड़ी क्षेत्र के ढ़लान तथा दूरस्थ क्षेत्रों के लिए अति उपयुक्त है। इसकी बाजार में निरन्तर मांग एवं अच्छे दामों के कारण परंपरिक फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी माना जाता है। इसमें सिट्रोनीलाल (22-32 प्रतिशत), जिरेनियॉल (12-15 प्रतिशत) एवं नीरॉल (8-12 प्रतिशत) रसायन पाये जाते हैं। इसके तेल का उपयोग इत्र, सौन्दर्य प्रसाधन, तम्बाकू उद्योग, खाद्य उद्योग एवं औषधि आदि बनाने में किया जाता है। इसे समुचित जल निकास वाली मध्यम दोमट मिट्टी में उगाया जा सकता है। यह शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु के लिए उपयुक्त फसल है। इसका प्रवर्धन कलमों द्वारा किया जा सकता है। मैदानी क्षेत्रों में 30 x 30 x 30 सेमी.^{3} के गड्ढ़ों में

1 x 1 मीटर की दूरी पर तथा शीतोष्ण क्षेत्रों में 2 x 2 मीटर की दूरी पर पौधों को लगाया जाता है। समशीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में रोपण जनवरी में एवं शीतोष्ण क्षेत्रों में अक्तूबर-नवंबर या जनवरी-फरवरी में करना चाहिए। यह 10-15 वर्षीय फसल है तथा एक बार लगने के बाद 10-15 वर्ष बुआई से छुटकारा मिल जाता है।

इसकी अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु 20-25 टन गोबर / कंपोस्ट खाद, नत्रजन 100 किग्रा. फॉस्फोरस 50 किग्रा. तथा पोटाश खाद 50 किग्रा 0 प्रति हैक्टैयर प्रति वर्ष भूमि में मिलाना उचित रहता है। इसकी प्रति वर्ष 10-12 सिंचाई करना भी उचित रहता है। इसके फूलों की तुड़ाई प्रात:काल के समय में मार्च-अप्रैल / मई माह में रोपण के 18 माह बाद की जाती है। इसके फूलों का जल आसवन कर तेल प्राप्त किया जाता है। समशीतोष्ण जलवायु में इससे 20-30 क्विंटल / हैक्टैयर प्रति वर्ष एवं शीतोष्ण जलवायु में 40-50 क्विंटल / हैक्टैयर प्रतिवर्ष फूल प्राप्त होते हैं। इसके आसवन से समशीतोष्ण जलवायु में 0.4-0.5 किग्रा./ हैक्टैयर / वर्ष तेल एवं 1010 लीटर / हैक्टैयर / वर्ष गुलाब जल प्राप्त हो सकता है।

शीतोष्ण जलवायु में 0.5-1.2 किग्रा. / हैक्टैयर / वर्ष तेल एवं 1010 लीटर / हैक्टैयर / वर्ष गुलाब जल प्राप्त हो सकता है। समशीतोष्ण जलवायु में कृषि कार्यों पर व्यय लगभग 33000 रुपये / हैक्टैयर / वर्ष आता है जबकि आय लगभग 1,11,000 रुपये (तेल की दर 2 लाख/किग्रा. एवं गुलाब जल २0 रुपये/लीटर के आधार पर) तक प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार शुद्ध लाभ 78,000 रुपये / हैक्टैयर / वर्ष तक प्राप्त हो सकता है। शीतोष्ण जलवायु में औसत लाभ 30-40 प्रतिशत अधिक प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार उत्तराखंड में सुगंधित फसलों से आर्थिक समृद्धि बढ़ाई जा सकती है तथा इस हेतु सरकारी तथा गैर सरकारी प्रयास भी जरूरी हैं।

(आय-व्यय आंकड़े एच.आई.आर.डी.आई. देहरादून) के आधार पर हैं, जो क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग हो सकते हैं इसकी लागत एवं आय क्षेत्र विशेष के आधार पर अलग-अलग हो सकती हैं)

– डॉ. नवीन कुमार बौहरा
शोध अधिकारी
नॉन उड फॉरैस्ट डिविजन, वन अनुसंधान संस्थान,
देहरादून (उत्तराखंड)

विज्ञान कविता

एटम और भगवान

कण कण में बसता भगवान
जन जन में रहता भगवान,
माया तेरी बड़ी निराली
एटम में दिखता भगवान।

इलेक्ट्रॉन है छोटा कितना
सुई नोक का खरब है जितना,
एटम में जब छलांग लगाए
ऊर्जा का इक अंश निकलता।

स्फुरण, प्रस्फुरण यह दिखाते
स्पेक्ट्रम से पहचान बताते,
नगण्य कहो तुम इनको कितना
अनेक प्रभाव यह दिखलाते।

एटम खुद है छोट इतना
नाभिक का तो फिर क्या कहना,
लेकिन इसे विखंडित करके
मिलती ऊर्जा चाहे जितना।

विकिरण के स्वरूप तो देखो
एल्फा, बीटा, गामा परखो,
यह भी ऊर्जा अपनी रखते
खूब संभाल कर इनको रखो।

कवि कुलवंतह सिंह
2-डी, बद्रीनाथ , अणुशक्तिनगर,
मुंबई - 400 094.

विज्ञान कथा

प्रतिरोध

डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय

अध्यक्ष : भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति, परिसर कोठी काके बाबू, देवकाली मार्ग, फैज़ाबाद (उ.प्र.) - 224 001.

गृत्समद पोलिस-चंद्रमा की गृत्समद पोलिस और समीप कोपरनिकस घाटी का पूरा क्षेत्र एक विशाल नगर में परिवर्तित हो चुका था। यदि कोई आज उस पल पोलिस को देखता तो यह देखकर उसे सहसा विश्वास न होता कि यही वह स्थल है जिसका निर्माण आज से दो सौ वर्षो पूर्व हुआ था। यह पोलिस सक्रिय संरचना का प्रतिनिधित्व करती थी। प्राचीन मुख्य भवन जो ऐतिहासिक महत्व का हो चुका है, वह नगर के केंद्र में और उस भवन की ऐतिहासिकता तथा प्राचीनता को सुरक्षित रखने हेतु उस पर पिछले पचास वर्षों से पेंटिंग नहीं की गयी है।

इस पोलिस के राजपथ, पृथ्वी के प्रमुख देशों, स्थानों, व्यक्तियों तथा नक्षत्र मंडल के विभिन्न समूहोंके नामों पर उन्हें सन्मान देने तथा अविस्मरणीय बनाने हेतु किये गये हैं। इन्हीं राजपथों में से एक है उत्तरी अमेरिका का राजपथ। प्राचीन अमेरिका की वैज्ञानिक प्रगति को सम्मान देने हेतु ही इस पथ को यह नाम दिया गया है। यहीं पर स्थित है विख्यात पदार्थ पारण भवन।

नव स्थापित पदार्थ पारण केन्द्र में आजकल काफी हलचल हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ पर कुछ विशेष कार्यक्रम चल रहा है, क्योंकि अनेक विशेषज्ञ वहाँ पर सक्रिय हो रहे हैं। उनमें से कुछ सुपर कंप्यूटरों के, नॅनों कम्प्यूटरों के, कुछ अन्य संबंधित विधाओं के कई नवीन विकसित की गई जैव प्रौद्यौगिकी के विशेषज्ञ हैं। उनमें चंद्रमा के अनेकों विशेषज्ञों के साथ पृथ्वी के अनेक देशों के विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक विधाओं के विशिष्ट विशेषज्ञ भी हैं जो चन्द्रमा के भविष्य निर्माण की योजना को साकार स्वरूप देने में लगे हैं। उत्तरी अमेरीका राजपथ के दाहिनी ओर विख्यात हरा-भरा क्षेत्र दिखाई पडता है, उसमें स्थित भवन का परिसर विविध प्रकार के वृक्षों, पादपों तथा लता समुहों से घिरा है। इन पादपों की विशेषता यह है कि उनका विकास पार्थिव पादप समूहों की जेनेटिक संरचना में, चंद्र धरातल अनुरूप परिवर्तन कर, उन्हें विकसित किया गया है।

यह केन्द्र, धरातल से सात मंजिल ऊपर और सात मंजिल नीचे है। प्रत्येक तल तीस हजार वर्ग मीटर क्षेत्र में संरचित है। मानव प्रक्षेपण, पारण प्रयोगशाला सातवें तल पर, कई आदिम जीवों के पारण हेतु इस भवन का छठा तल है। पाँचवें तल पर पदार्थ पारण यंत्र हैं तथा बारहवें, तेरहवें और भूमिगत तल कार्यकर्ता गणों की सुरक्षा हेतु निर्मित है।

यह तल रेडियोधर्मिता तथा प्रत्येक प्रकार के आघात को सहन करने में सक्षम है। आवश्कता पड़ने पर पोलिस के वैज्ञानिक एवं सामान्जन्य पोलिस के भूगर्भ में निर्मित अंतिम तीन खंडों में पोलिस के पचास केंन्द्रों की भाँति ही कई वर्षों तक शरण लेकर सुरक्षित एवं जीवित रह सकते हैं। इस केन्द्र के तीसरे और चौथे तल पर कंप्यूटर केंद्र तथा प्रथम और द्वितीय तलों पर, स्वागत कक्ष, ऑफिस तथा पुस्तकालाय और कांफ्रेंस रूम क्रमश: स्थित है। मुख्य मशीनें 8,9,10 वें तल पर तथा विशाल जनरेटर 11 वें तल पर हैं।

पाँचवें तल पर पदार्थ पारण की मुख्य प्रयोगशाला, विशालकाय यंत्रों की ध्वनी से सदैव आगंतुकों का ध्यान आकृष्ट करने में सफल रहती है। इसका कारण है कि इस कक्ष में दिन-रात कार्य होता रहता है।

विशेष यंत्रों के माध्यम से, विविध प्रकार के निर्मित पदार्थों को इस केंद्र के पास या निकट बने, निर्दिष्ट स्थान पर लाया जाता है और उसका उपयोग चंद्र धरातल पर चल रही अनेक परियोजनाओं को स्वरूप देने में किया जाता है।

चंद्र तल पर सर्वथा नवीन विधियों के निर्माण कार्य संपन्न होते हैं। इसी कारण इस प्रयोगशाला का यहाँ अत्यधिक महत्व है। पांचवें तल पर स्थित इस प्रयोगशाला के नीचे छठे तल पर स्थित है आर्थोपोडा समुदाय के तथा उसके निम्न श्रेणी के जीवों को समीपर्वती अन्य ग्रहों पर प्रषित कर देने का यंत्र, जहाँ वे जीव जाकर जीवित रह सकते हैं और अपनी वृद्धि सहजता से कर सकते हैं। यह विशिष्ट यंत्र, जो अपनी कार्य क्षमता के लिए मंगल और अन्य ग्रहों पर जीवन यापन कर रहे मानव समुदायों में विख्यात हैं।

यह 3 X 3 मीटर का यंत्र पूर्णरूपेण स्वनियोजित एवं स्वचालित होने के कारण संकेत मात्र पाने पर कार्य संपादित कर देने में सक्षम है। परन्तु इसके संपेषण विधि में कुछ त्रुटि आ जाने के कारण इसके विशेषज्ञों के ललाट पर स्वेद बिंदू उभर आये हैं, बात भी उचित है, स्वभाविक है, जब सारे के सारे आर्थोपोड मंगल की प्रयोगशला में मृतक होकर पहुँच रहे हों।

''मैंने मंगल के भास्कर सरोवर क्षेत्र हेतु जो अयस्क और अन्य पदार्थ संप्रेषित किया था, वे सभी वहाँ पर पूर्ववत पहुँच गये हैं....परंतु....''

''तुम रुक क्यों गयी रोज?'' डॉ. मैंसन ने जानना चाहा।

'' मैंने इस बार वहाँ मंगल के भास्कर सरोवर स्थित प्रयोगशाला में परीक्षण हेतु कुछ स्विस माइस 7 वीं मंजिल की प्रयोगशाला से भेजे थे, अभी उस प्रयोगशाला की एनीमल कीपर सिल्विया का संदेश है कि उनमें से आधे स्विस माइस मर गए'' रोज के स्वर में चिंता झलक रही थी।

'' क्या हमारे संप्रेषण में, गणना में, अथवा टाईमिंग में कुछ कमी ही, मेकेनिकन एरर हैं ?'' डॉ. मैसन से जानना चाहा।

'' मैं अभी इस विषय पर कुछ कर पाने में असमर्थ हूँ रोज! मुझे पुरे संयंत्र की जाँच करनी पड़ेगी। इस कार्य हेतु मैं एंड्राइडों ''क्लोसियस'' एवं ''क्लाईमेक्स'' को भी लगाऊँगा'' कहते हुए डॉ. मैसन ने एक बार पुन: उस यंत्र को ध्यान से देखा।

'' हम इस बार भी असफल रहे'', डॉ. डॉन आपरेटर जूल कुछ तनावग्रस्त होकर कह रहे थे।

'' क्यों क्या हुआ?''

'' मेरे मंगल की भास्कर सरोवर की प्राइवेट प्रयोगशाला हेतु भेजे गये, सभी बंदर न जाने कैसे मृत हो गये।'' आपरेटर जूल कह रहे थे।

'' यह पहली बार हुआ है, जब मैं संप्रेषण को सफल स्वरूप नहीं दे पाया हूँ। पिछले महीने भेजे गये बन्दर आज भी उस प्रयोगशाला में स्वस्थ और वंश वृध्दि कर रहे हैं'' दु:खी जूल के शब्दों ने डॉ. डॉन को भी चिंतित कर दिया। उन्होंने जूल को सांत्वना दी, समझाते हुए कहा, '' मैं अन्य सहयोगियों के साथ इस समस्या पर विचार करूँगा। तुम अब ट्रान्सपोर्टेशन का कार्य बंद कर दो। हमारे किसी निश्ति परिणाम पर पहुँच ने तक यह कार्य बंद रहेगा। मंगल की प्रयोगशालाओं को भी इस समस्या के विषय में अवगत करा दो।'' कहते हुए डॉ. डॉन द्वितीय तल पर स्थित विशाल पुस्तकालय एवं कांफ्रेंस हॉल में जाने के लिए लिफ्ट की बटन को दबाने लगे।

कांफ्रेन्स हॉल भरा था। निदेशक सहित सभी विशेषज्ञों के मानस में एक ही प्रश्न घूम रहा था कि यंत्र क्यों अब उचित रूप से कार्य नहीं कर रहे हैं। क्या यह व्यवधान, या समस्या किसी तकनीकी कमी के कारण है अथवा इसका कारण कुछ अज्ञात नवीन त्रुटि तो नहीं है।

निदेशक ने डॉ. डॉन से इसके विषय में अपना विचार स्पष्ट करने के लिए कहा। डॉ. डॉन ने अर्थपूर्ण नेत्रों से निदेशक की तरफ देखा और कहने लगे '' मैंने सभी मुख्य मशीनों की जाँच के लिए, इस कार्य हेतु निर्मित रोबो 'क्लाइमेक्स' को निर्देशित कर दिया है। मुझे उनकी प्रगति की सूचना कुछ समय बाद आज मिलनी चाहिए।

''वैसे आपका इस विषय में, मेरा तात्पर्य है इस आकस्मिक रूप से आ गई यांत्रिक त्रुटि.... हाँ इसे यांत्रिक त्रुटि ही माना जाएगा..... के विषय में, डॉ. डॉन आपका क्या विचार है?'' निदेशक ने जानना चाहा।

''मैंने कंप्यूटरों के संदेश संप्रेषण प्रणाली की जाँच शुरु कर दी है। अभी तक तो मुझे कोई त्रुटि दिखायी नहीं पड़ रही है, परंतु इस कार्य हेतु मुझे समय चाहिए। ऐसे कार्यों में शीघ्रता नहीं की जा सकती।'' डॉ. डॉन का उत्तर सुनकर निदेशक ने भी सहमति सूचक ढंग से सिर हिलाया।

अभी तक मौन बैठी रोज ने कहा-''विचारणीय बिंदु है की जब मैं किसी जीवधारी का पदार्थ पारण कराने का प्रयास एक या दो मास पूर्व करती थी, तो इसमें शत प्रतिशत सफलता मिलती थी....परंतु इस सप्ताह यह असफलता की समस्या कहाँ से आ गई?''

इस प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा हो रही थी कि कंप्यूटर गणितज्ञ डॉ. शूची ने कहा ''संभावानायें तो अनेक हो सकती हैं, पर मेरी ऐसी अवधारणा है कि यह समस्या मात्र यांत्रिक त्रुटि के कारण उत्पन्न नहीं हो सकती, इसके लिए इस पदार्थ पारण विधा से जुड़ी अन्य पक्षों को भी ध्यान में रखना होगा।''

''क्या कहना चाहती हैं आप डॉ. शूची?'' डॉ. डॉन ने चकित भाव से उनके नेत्रों में झाँकते हुए, उनके विचारों को पढ़ने का प्रयास किया।

''क्या अपने यंत्रों की इलेक्ट्रो मैग्नेटिक फ्रिकेंसी जाँच करने का प्रयास किया है?''

''मैंने इस कार्य हेतु किसी रोबों को न लगाकर, इसकी जाँच का भार रोज को दिया है। आप जानती ही है कि रोज का सारा कार्य फ्रिक्वेंन्सी मॉडूलेशन से जुड़ा हुआ है'' डॉ. डॉन का उत्तर था।

''मैंने इस दिशा में कार्य प्रारम्भ कर दिया है, और मैं आशा करती हूँ कि परिणाम हमें शीघ्र ही प्राप्त होना प्रारंभ हो जायेगा'' रोज ने तटस्थता भरे स्वर में सभी को सूचित किया।

अनेक प्रकार के संबद्ध और असंबद्ध प्रश्नोत्तरों के उपरांत सभी अपने कार्यों के परिणाम की जाँच, यंत्रों की कार्यक्षमता की पुर्नजाँच करने हेतु चल दिये।

मात्र रोज, डॉ. मैसन तथा डॉ. डॉन किसी गहन विचार विमर्श में डूबे रहे।

''मैंने इस पदार्थ पारण कार्य में लगे हुए प्रत्येक रोबो की मानसिक क्षमता, कार्यक्षमता, विवेक और स्वविकसित हो

जाने वाली कृत्रिम बुद्धि के विषय में गहराई से जाँच कर ली है।'' डॉ. मैसन रोज को बताते हुए कह रहे थे। इन सभी जाँच में कोई त्रुटि अथवा रोबो में कोई असामान्यता नहीं मिली।''

'' फिर समस्या यह है कि हम जीवों का संप्रेषण क्यों नहीं कर पा रहे है'' रोज ने कहा।

''मेरे विचार से डॉ. मैसन हमें अपने यंत्र की पदार्थ पारण करते समय जाँच करनी होगी.....बेहतर होगा कि हम धारा की साइकिल प्रति सेकंड के पक्ष पर अधिक ध्यान दें।'' विचार करते हुए गंभीरतापूर्ण स्वर में डॉ. डॉन ने कहा।

''आपके विचार से विद्युत धारा की आवृति में कुछ समस्या हो सकती है'' रोज ने जानना चाहा।

''जाँच करने में कुछ हानि तो नहीं है। अच्छा होगा कि यह जाँच डॉ. डॉन और जूल के साथ की जाये। डॉ. मैसन का सुझाव था।

पदार्थ पारण यंत्र का कक्ष काफी गहरा था। मु ख्य यंत्र दस मीटर नीचे था और सीढ़ियों से होते हुए जाँच कर रहे डॉ. डॉन यांत्रिक मानव, मैसन, रोज, जूल सभी कानों में इयर प्लग लगा कर उसकी विद्युत आवृत्ति बनाने वाले मीटर को ध्यान से देख रहे थे। यंत्र भीषण ध्वनि करता हुआ गतिमान था। जैसे वह उन्हें बधिर कर देना चाह रहा हो। उससे संबध्द पदार्थ पारण उपयंत्र जो पाँचवे तल पर स्थित था, को सक्रिय करने डॉ. डॉन और रोज ऊपर गये। यंत्र गतिमान हुआ और पदार्थ पारण प्रयोग सफलता पूर्वक संपन्न हो गया। इस कार्य हेतु भेजे गए लौह अयस्क मंगल के भास्कर सरोवर क्षेत्र की प्रयोगशाला में सरलता से पहुँचे गये। इस सुखद सूचना से सभी को शांति मिली। डॉ. डॉन ने 8 वे तल में मुख्य मशीन के समीप खड़े वैज्ञानिकों को सूचित किया कि वे लोग अब छठे तल पर उतर कर आर्थापोडा आदि जीवों पर प्रयोग करने के विषय में सोच रहे हैं।

इस कार्य को संपन्न करने हेतु उन्हें सभी की सहमति मिल गई। उपयंत्र चल रहा था और रोज के हृदय की गति भी उस यंत्र की गति के तीव्र होने के साथ बढ रही थी। यंत्र पूरी तरह गतिशील हो गया था। उसमें जा रही विद्युतधाराकी आवृत्ति सामान्य थी सभी कुछ सामान्य रूप से चल रहा था। यंत्र के प्रक्षेपण कक्ष में कुछ टिड्डियाँ और ग्रासहापरों को रख दिया गया।

यंत्र की बटन को प्रेस कर दिया गया।

मंगल के भास्कर सरोवर प्रयोगशाला को सूचना दे दी गई। एकाएक जूल ने यंत्र की विद्युतधारा में अति स्वल्प क्षरण की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया।

चकित से सभी ने इसे देखा। यह तथ्य सभी को चकित और दुखित करने वाला था। सभी कीड़े टिड्डियाँ और ग्रास हापर मृतक हैं, परंतु यहाँ पर वे आए गये हैं।

यह स्वल्प क्षरण विद्युतधारा की अवृति से संबध्द क्षरण क्यों और कैसे हो रहा है? सभी के मानस में यही प्रश्न चक्रवात की भाँति घूम रहा है था।

डॉ. मैसन का विचार था कि ऐसा होना उसी अवस्था में संभव है। जब किसी प्रकार का प्रतिरोध विद्युतधारा को प्रभावित करे।

''परंतु यह क्षण अतीव सूक्ष्म है, इस कारण प्रतिरोध को उत्पन्न करने के क्षरण के कारण अधिक दूरी पर स्थित न होकर, कुछ समीप पर हो'' डॉ. डॉन ने अपना विचार व्यक्त किया।

''यह भी संभव है कि यह प्रतिरोध, विद्युतधारा की आवृति संख्या के क्षरण के कारण अधिक दूरी पर स्थित न होकर, कुछ समीप पर हो'' डॉ. डॉन ने अपना विचार व्यक्त किया।

''हमारे रोबोगण ऐसा नहीं कर रहे हैं, क्योंकि उनके परिपथ को हमने इस प्रयोग के पूर्व बंद कर दिया है, रोज का तथ्य को स्पष्ट करते हुए प्रति उत्तर था।

ऐसी स्थिती में हमें उस सूक्ष्म विद्युतीय तरंग के उद्गम को खोजना आवश्यक हो जाता है'' संस्थान के निदेशक ने अपना विचार व्यक्त किया।

कीटों और टिड्डों तथा ग्रासहपारों के प्रयोग को पुन: दोहराने के साथ-साथ उस विद्युत स्रोत के उद्गम स्थल को ज्ञात करने हेतु संवेदक भी लगा दिये गये।

प्रयोग प्रारंभ हुआ..... संवेदक ने सुक्ष्म मात्रा में विद्युत उद्गम स्थल को ज्ञात करने हेतु यंत्र से एक किलोमीटर की दूरी पर पूर्वी टीले के नीचे इंगित किया।

यह तथ्य सभी को चकित कर देने हेतु पर्याप्त था। अब जूल और डॉ. डॉन को छोडकर सभी ने उस पूर्वी टीले की तरफ जाने का निश्चय किया।

रोवर द्वारा वहाँ पहुँचने में मात्र दस मिनट लगे।

संकेत पाकर जूल ने पुन: प्रयोग प्रारंभ कर दिया। संकेत के उद्गम स्थल पर विद्युतीय आवृति में परिवर्तन हेतु, विद्युतधारा जो अति स्वल्प मात्रा में उत्पन्न हो रही थी, को संवेदक इंगित करने लगा।

उसकी आवृति पर पूर्व की योजना के अनुसार डॉ. डॉन ने सिग्नल दिये तो जो संदेश आया वह उन्हें चकराने के लिए पर्याप्त था। अंतरतारकिय संकेत, कोड के अनुसार विघ्नकर्ता था अविस्वसनिय एवं विचित्र, एक सिलीकन की संरचना, विलक्षण, और बुद्धि युक्त संरचना.....!

''तुम कहाँ से आये हो ऽ ऽ'' उद्वेलित स्वर में रोज ने साश्चर्य प्रश्न किया।

''मैं मंगल धरातल का वासी था.....पदार्थ पारण के परिणाम स्वरूप में इस स्थल पर आया'' उत्तर सुनकर डॉ. डॉन ने जानना चाहा .....

''क्या मंगल ग्रह के धरातल पर तुम एकाकी थे, अथवा तुम्हारे सदृश्य अन्य....!'' वे बात पूरी न कर सके।

त्वरित उत्तर था ''मेरे साथ मेरी भाँति ही अनेक सदस्य हैं.... हमारी कॉलोनी है।''

''इसका अर्थ यह है कि तुम यहाँ चंद्र धरातल पर एकाकी हो'' रोज का प्रश्न था।

'' हाँ, बात सत्य है, पर अब हमारे सदस्य तुम्हारे पदार्थ पारण का लाभ लेकर चंद्रमा के इस क्षेत्र में शीघ्र आने वालें हैं।''

''तुम्हें यह बुद्धि, यह विवेक किसने दिया?'' डॉ. मैसन ने जिज्ञासापूर्ण स्वर में जानने की इच्छा व्यक्त की।

''हमने स्वत: यह विवेक विकसित किया है, और इस ज्ञान को हम अपने सदृश्यों को म्युटेशन द्वारा देते है'' यह उत्तर सुनकर सभी स्तब्ध थे।

''तुम्हारा म्युटेशन, ज्ञान का म्युटेशन किस प्रकार होता है?''

''तुम्हारे डी. एन. ए. में म्युटेशन के ठीक विपरीत क्रम में'' उत्तर था।

क्या तुम्हारा ज्ञान सिंगिल स्टड में सीधे संकेतों को प्रवर्धित करने पर उत्पन्न होता है ?'' डॉ. मैसन ने जिज्ञासा प्रकट की।

''तुम्हारा कथन हमारे ज्ञान तथ्य के समीप है'' उत्तर आया।

''तुम क्या हमारे जीव पारण में, संप्रेषण में विघ्न उत्पन्न कर रहे हो?''

''कारण तो अब तुम बताओगे ही'' जूल ने कहा।

''हम सभी, अपने को जीवधारी कहने वाले मानव, उसकी प्रजाति के, वंशजों को.... कार्बन निर्मित जीवों को देखना नहीं चाहते! वे घृणा के पात्र हैं। वे विज्ञान अभी सीख रहे हैं। उनकी दृष्टि में जीवन मात्र कार्बन और अन्य रसायनिक यौगियों के कारण उत्पन्न हुआ है, जो तथ्यत: असत्य है, गलत है। उनकी जीव की अवधारणा त्रुटिपूर्ण है। क्या हम सिलकिस युक्त बुद्धिवाले ''प्राणी'' नहीं है? क्या हम में विवेक, बुद्धि और वंशवृद्धि के तत्व विद्यमान नहीं हैं.... क्या हम तुमसे किसी भाँति न्यून हैं हम कुंज के, अंगारक के, मंगल के धरातल पर तुम्हारे पदार्पण का, जीवों आदि के जाने आने का प्रतिरोध करते हैं। हम मंगलवासी हैं, मंगलवासी हैं, मंगल ग्रह हमारा है। तुम आक्रांता हो इसी कारण मैं और मेरे सजातीय..... यह शब्द तुम्हारे और हमारी भाषा में समानार्थी हैं, उभय निष्ट हैं..... मेरे सजातीय, नहीं चाहते कि तुम मानव मंगल ग्रह पर वास करो, निवास करो और कालान्तर में हमारा विनाश करो! सभी के चेहरों पर आश्चर्य का भाव झलक रहा था....वह ध्वनि शायद हमारी प्रतिक्रिया समझने का प्रयास कर रही थी.... वह एकाएक शांत हो गई थी.... ऐसा लगता था कि जैसे सभी उसके इस मौन के भंग होने की प्रतीक्षा कर रहे हो।

विज्ञान कविता

वन की पुकार

मैंने हमेशा किया है उपकार
फिर भी मानव ने किये हम पर अत्याचार,
चन्द स्वार्थ में खो दोगे, कुदरत का भंडार,
कुछ समय बाद देखोगे, उजड़ा - उजड़ा ये संसार।
अचल तथा गूंगे की तरह है मेरा जीवन,
फिर भी हरा भरा रखता हूँ मैं आपका उपवन,
मुझ पर आये कष्ट किससे कहूँ,मैं तो हूँ लाचार,
फिर भी मानव ने किये हम पर अत्याचार।
हे मानव । न तू गूंगा है और न है लाचार,
मेरी छाया में बैठकर बातें कर लो दो, चार,
न आप कुछ ले जाओगे, और न मैं,
बस, रह जाएगा हमारा तुम्हारा प्यार।
अपनी जनसंख्या बढ़ा रहे , मेरी घटा रहे हो,
ऐसा मैंने क्या किया अत्याचार,
मजबूरी का उठा लो फायदा,
क्योंकि मैं हूँ लाचार।
सोच-सोच कर इसी बात से चिन्तित रहता हूँ,
मुझ पर खाओ तरस मैं भी जीना चाहता हूँ,
मुझे कर दोगे खत्म तो बहुत पछताओगे,
इस दूषित वातावरण में जी नहीं पाओगे।
हे मानव । तू मिट्टी का है मिट्टी में मिल जाएगा।
मुझ पर खाओ तरस, साथ कुछ नहीं जाएगा।

डॉ. शैलेन्द्रकुमार
वरिष्ठ अनु. सहायक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून.

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से

1. बोरान संयंत्र में माइक्रोफाऊलिंग की समस्या

बोरोन के समृध्दिकरण की तकनीक आयन विनिमय - (आयन एक्स्चेंज,IX क्रोमोटिक सिद्धांत पर आधारित है। व्यावसायिक ग्रेड HCL को खनिज रहित (DM) जल दे तनु कर, निधालक (eluent) के रूप में IX कॉलम में पंप करते हैं। एबोनाईट रबर की पर्त युक्त (लाइनिंग) पाइपों और कॉलमों का इस्तेमाल किया जाता है। बोरिक एसिड का घोल, IX कॉलमों में डाला जाता है, जिससे बोरेड बैंड विकसित होता है। ^{10}B का समृध्दिकरण, IX कॉलम में बोरेट बैंड की गति के कारण होता है। सोडियम हाइड्रोक्साईड, रेजिन स्तरों (बेड- bed) को पुनर्जित (रिजनरेशन) करने मों प्रयुक्त होता है।

हाल ही में IGCAR- कल्पाक्कम में स्थित बोरोन समृद्धिकरण संयंत्र में रुकावट उत्पन्न हो गयी थी। यूँ तो पाइपों का वातावरण, जीवों के लिए कठोर है, (बहुत कम PH है, और प्रगट में कार्बन की अनुपस्थिति) पर फिर भी सूक्ष्मजीवी (माइक्रो ओरगेनिजमस) वहाँ बचे, पनपे और इतने बढ़े कि जैवमात्रा (बायोमास) ने पाइप प्रणाली को अवरूद्ध कर दिया। पाइप के कई भागों में सूक्ष्मजीवी पाये गये। बायोमास के परीक्षण से पाँच तरह के सूक्ष्मजीवी मिले, दो प्रकार की फुंगिया (फंगाई) और तीन तरह के जीवाणु (बेक्टेरीया) भी थे। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि एबोनाइट रबर की लाइनिंग, सूक्ष्म जीवों के लिए पोषक पदार्थ थी। एंटी-फंगुल जीवनाशक, सोडियम ओमाडाईन, प्रभावी पाया गया पर यह जीवनाशक, बोरोन संयंत्र में प्रयुक्त के उपयुक्त नहीं था। अत: अन्य नियंत्रण विधि अपनानी पड़ी।

ज्यादातर सूक्ष्मजीवी बहुकोशीय सतहों से जुड़े समुहों में रहते हैं, जिसे जैव पर्त (बायोफिल्म) कहते हैं। ये जैव पर्तें, प्राय:, उन ठोस सतहों पर जो जलीय वातावरण में रहती हैं, विकसित होती हैं। उद्योगों में जैव पर्तें, शीतलन-प्रणालियों में दाब कम कर, द्रवणितों (कंडेन्सरों) में ताप-स्थानांतरण दक्षता को कम कर, सहायक शीतलकों के निष्पादन में कमी कर, कई बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। जैव पर्त की, प्रारंभिक बढ़त उपस्थित जल की गुणवत्ता और जल-ठोस सतह पर पोषक तत्वों की उपस्थिती से प्रभावित होती है। बाद में सूक्ष्मजीवों का उपापचय रासायनिकी वातावरण को प्रभावित करता है। प्राय: जैवपर्त की बहुकोशीय मैट्रिक्स में पोषक होते हैं। इसके साथ ही पदार्थ की सतह भी संलग्न सूक्ष्मजीवों को पोषक तत्व प्रदान करती है।

बहुत से बहुलक (पॉलीमर) पदार्थ सूक्ष्मजीवों के आक्रमण से मुल माने जाते हैं। पर ये जैवपर्त को बनने में आधार प्रदान कर सकते हैं। प्लास्टिक व रबर के पदार्थों में प्राय: योगज (एडीटीव) और अशुद्धियाँ होती हैं जो मैट्रिक्स से निछालित होकर कभी कभी बाहर आ जाती हैं। प्लास्टिक और रबर उत्पादों का जैव निम्निकरण (बायो डिगरेडेशन) उनके निपटान-प्रबंधन (वातावरणीय-उपयुक्त तरीकों) में बहुत महत्व रखता है। साधारणत: कोई भी बहुलक जैविक बढ़त में पोषक स्रोत की तरह तभी प्रयुक्त हो पाता है जब उसे छोटे अणुओं में तोड़ा जा सके ताकि वह कोशीय पर्त को पार कर सके। सतह निम्निकरण, दो सतहों के मध्य होने वाली प्रक्रिया, कई प्राचलों पर निर्भर करती है। सूक्ष्मजीवों के उपापचयों के दौरान निकलने वाले ऋणायन यौगिक, धनायन पदार्थों के साथ क्रिया कर लवण बनाते हैं। लवणों की अधिकता या PH में कभी (सतह पर सूक्ष्मजीवों की क्रियाओं के कारण) बहुलक की मैट्रिक्स को तोड़ सकती है। सूक्ष्मजीव एक्सोएंजाइम का उत्पादन कर अघूलनशील बहुलक पदार्थों का टुटना बढ़ा सकते हैं। ऐसी रिपोर्ट हैं कि सिलिकोन रबर के बने स्वर-यंत्र (कृत्रिम - अंग) मिश्रित प्रजातियों की जैव पर्त द्वारा निम्नकृत हो गये। इस तरह जब सिलिकान रबर कुचालकर को जल-एगी (हाइड्रोफिलिक) बायो पर्त से ढका जाता है तो उसका जल विरोधी गुण कम हो जाता है। सीलन में क्षरण-धारा (लिंकेज-करंट) में बढ़ोत्तरी (सूखे कुचालक की तुलना में) इसी कारण से होता है। अत: कई पदार्थ जो प्रयोग शाला में निम्निकृत नहीं होते हैं, बाह्य परिस्थितियों में सूक्ष्मजीवोंकी उत्पत्ति को बढ़ावा दे सकती है। रबर/प्लास्टिक की लाइनिंग वाले पाइपों पर सूक्ष्मजीवों के हमले से संयंत्रों में गंभीर स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

बोरोन संयंत्र में प्राप्त सूक्ष्मजीवों की जैवमात्रा का विस्तृत अध्ययन किया गया। समस्या का कारण तो ज्ञात हुआ, पर कोई उचित रसायनिकी हल नहीं मिला। समस्या का सर्वश्रेष्ठ हल, भंडारण पात्रों व पाइपों को अम्ल विराधी पदार्थ से बनाना ही है। अत: समस्या के हल के लिए प्रभावित पाइपों को बदल दिया गया।

2. काकरापार संयंत्र के अपशिष्ट में रेडियोधार्मिता की और कमी

भारी पानी दाबित रिएक्टरोंके प्रचालन और रखरखाव के दौरान निम्नस्तरीय रेडियोधर्मी अपशिष्ट उत्पन्न होता है। इस द्रव में मुख्यत:H-3, Cs-134+137, Sr-90, CO-60, Zn-65, Mn-54 आदि होते हैं। इन रेडियों नाभिकों में सबसे मुख्य रेडियो

धर्मिता H-3 की होती है, जो न्यून-ऊर्जा के बीटा कण (औसत ऊर्जा 6.0 keV) निकालता है। इसके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण रेडियो नाभिक Cs-134+137, Sr,-90 व CO-60 हैं जो अपशिष्ट को और तनुकर, निकटवार्ती जल-इकाई में (मानद अपशिष्ट -प्रबंधन के अनुसार ही छोड़ा जाता है। यदि इन रेडियोधर्मी नाभिकों वाले अपशिष्ट द्रव को जल-इकाई में लगातार छोड़ा जायेगा तो उसकी रेडियो सक्रियता बढ़ती जायेगी। जिससे कुछ समय बाद, वे जलीय-खाद्य-श्रृंखला में प्रवेश कर मानवों को भी पर्यावरणीय विकिरण उद्भासन से प्रभावित कर सहते हैं।

पर्यावरण में इनको रोकने के लिए यह अत्यावश्यक है कि अपविष्ट द्रव को तनु करने से पहले इन नाभिकों को उसमें से (जहाँ तक संभव हो) हटाना चाहिए ताकि कम से कम और उचित प्राप्य पर्यावरण विकिरण उद्भाषण (अपशिष्टि को तनु करने के बाद) मिले।

इस उद्देश्य से अकार्बनिक अवसोषक जैसे, कापर-आयरन-हेक्सा सायनो फेरेट -II (CUFe-HCF) लेपति एक्राइलिक फायबर (Cs-134+137 के लिए) व मेनगनीज डायआक्साइड लेपित एक्राइलिक फायबर(Sr-90 और CO-60 के लिए) बनाये गये हैं। इनकी, इस हेतु उपादेयता जाँचने के लिए काकरापार एरोमिक पावरसंयंत्र में, परीक्षण किये गये। CUFe-HCF लेपित एक्राइलिक फायबर (5 kg) व (MnO_2) लेपित फायबर (2 kg) को मृदु इस्पात के बने बेलनाकार पात्र में भरा गया। पात्र का आयनन 130 लीटर था। इन लेपित फायबरों के तहों के बीच-बीच साधारण फायबरों की तहें (1kg/प्रत्येक) थीं। इसे छन्नक कॉलम कहा जायेगा। द्रवीय अपशिष्ट को छन्नक कालम के उपरी भाग से प्रवेश करा कर निर्गत द्रवको ऊपरी भाग से ही निकाला गया। इस कालम को द्रवीय-अपशिष्ट के टैंक (क्षमता 4000 लीटर) से जोड़ा गया। आगत द्रव को 20 लीटर/मिनट की दर से पंप किया गया था। एक पूरे चक्र (साईकिल) के बाद अपशिष्ट 65% बीटा धर्मिता निकल गयी तथा बारह चक्रों के बाद कुल बीटा धर्मिता का 80% कम हो गया। रेडियो धर्मी नाभिक Cs-137, Cs-137, CO-60 और Sr-90 क्रमश: 56%, 53%, 53%, व 95% एक चक्र में कम हो गये। बारह चक्रों के बाद Cs-137 व Cs-134, 8% कम हुए पर CO-60 तथा Sr-90 में और कमी नहीं आयी।

इस विधि का प्लांट-स्केल पर परिक्षण/परिचालन किया गया है।

3. अत्यधिक दाब और ताप पर Nd: ग्लास लेजर द्वारा पदार्थ उत्पादन व पदार्थ अध्ययन

भा. प. अ. के. के भौतिक विभाग का लेजर एवं न्यूट्रॉन भौतिकी अनुभाग(केंद्र) लेजर-जनित अत्याधिक उच्च ताप और लेजर -जनित उच्च दाब की प्रघात तरंगों के अध्ययन में संलग्न है। यह कार्य कई सालों बाद से चल रहा है। इस हेतु नैनो (10^{-12}) सेकेंड पीसे. और सब पीको ($<10^{-12}$) सेकेंड के उच्च ऊर्जा-लेजरों का उपयोग किया जाता है, जिन्हें देश में ही विकसित किया जाता है। इस उद्देश्य से विकसित नवीनतम तीव्र Nd:Glass लेजर, 300-800 पी को (10^{-}) सेकेंड काल के स्पंदन जिनकी महत्तम ऊर्जा लगभग 12 जुल प्रति स्पंदन देने योग्य है। इसका लक्ष्य (टारगेट) पर फोकसित लेजर तीव्रता लगभग (10^{12}-10^{15} W/सेमी^{2}) है। इतनी अधिक लेजर तीव्रता से जनित प्लाज्मा ने अत्याधिक तापमान (कुछ सौ इलेक्ट्रॉन वोलट) और दाब (कुछ दस मेगा बार) पर पदार्थों में द्रव गतिकीय घटनाओं के अध्ययन को संभव बना दिया है। इस तरह से जनित प्लाज्मा का जीवनकाल कुछ नैनो सेकेंड नैसे. होता है और वह आकाश (space) में कुछ सौ माइक्रोमीटर ही फैला होता है। इस प्लाज्मा के अध्ययन में आवश्यक नैदानिक विधियों की कालिय/विमेदन नेनौ सेकेंड से कम और उनका आकाशीय-विभेदन माइक्रोमीटर का होना जरूरी है। इस हेतु कई नैदानिक विधियां भी विकसित की गयी ही। (तालिका 1 देखिये)। इस संयंत्र का चित्र आवरण पृष्ठ पर दिया गया है ।

12 J /300-800 (स्पंदन) / सेकेंड की लेजर प्रणाली व्यावसायिक लेजर/दोलक पर आधारित है। लेजर-दोलक की निर्गत ऊर्जा 100 m J प्रति स्पंदन, स्पंदन पुनरावृतन दर 10 Hz और अधिकतम से पश्च-भूमि का विपर्यास (कांटरास्ट) 10^4 है। चूंकि Nd: Glass प्रवर्धक एकल शॉट तरीके से कार्य करते हैं, अत: दोलक भी एकल शॉट तरीके से कार्य करने हेतु बनाया गया है और इसे प्रवर्धक के पांच चरणों से सिंक्रोनाइज किया गया है, जिस के लिए विशेष तौर पर तेज सिंक्रोनाइजेशन सर्किट विकसित किया गया है।

लेजर को अधिकतम 1 गीगावाट/सेमी^{2} के ऊर्जा घनत्व पर प्रचलित किया जाता है, ताकि लेजर कांच में लेजर-प्रेरित प्रकाशीय ब्रेकडाउन न हो। इस लेजर का उपयोग कई प्रयोगों में किया गया/जा रहा है। जैसे:

1. Cu-Au मिश्र धातु के लक्ष्यो से X किरण और आयनों का उत्सर्जन
2. Cu नेनौ–कण लेपित Cu से लक्ष्य से नेनौ आयनों का उत्सर्जन
3. लेजर जनित प्लाज्मा से जनित X - किरणों का निरपेक्ष (एबसोल्यूट) मापन (तापीय प्रस्फरण डोजमापी द्वारा)

तालिका – लेजर प्लाज्मा और लेजर प्रघात अध्ययन के विविध मापों हेतु नैदानिक विधियां व उनका विवरण

नैदानिक विधि	प्लाज्मा प्राचल और विशेष	विवरण
X - किरण सेमी कंडक्टर डायोड	प्लाज्मा जनित X – किरणेां की कालिक माप व वर्णक्रमी माप	कालिक विभेदन 3 नै से. (ns)
सात चैनल X - किरण निर्वात फोटो डायोड (विभिन्न छन्नकों द्वारा विभिन्न ऊर्जा –परासों वाले)	प्लाज्मा/प्रघात क्षेत्र का कालिक व वर्णक्रमी तापीय मापन	विभेदन –100 पी से. (ps)
X - किरण पिन होल कैमेरा	प्लाज्मा, प्रघात क्षेत्र की आकाशीय फैलाव का माप	आकाशीय विभेदन 10 और 25 माइक्रोमी. (μm)
X - किरण पारगत ग्रेटिंग वर्णक्रमी	प्लाज्मा–जनित X - किरण का वर्णक्रम	वर्णक्रमी विभेदन 6A^0 (आँग्स्ट्रॉम – A^0)
क्रिस्टल वर्णक्रमी (TLAP व RbAP) विकास के छोर पर है	लेजर प्लाज्मा से प्राप्त कठोर X - किरण का वर्णक्रम	वर्णक्रमी विभेदन 0.01 A^0
लेंगमुइर प्रोब (Langmuir Probe)	आयन वेग, आयन तापमान, आयन धारा, आवेशीय अवस्था मापन	
फेराडे कप (FC)	टाइम ऑफ फ्लाइट (TOF) आयनों की स्पेक्ट्रोस्कोपी : आयन वेग, आयन तापमान, आयन धारा, आयन आवेश अवस्था आदि	तेज गति के आयनों का विभेदन करने में सक्षम
प्रकाशीय स्ट्रीक कैमेरा	प्रघात वेग और लक्ष्य वेग का मापन	विभेदन – 20 पी से.
VI SAR- सेट अप	कणों का वेग मापन	

प्रस्तुति : डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला
12 गीतांजली, प्लॉट नं. 52,
सेक्टर – 17, वाशी, नवी मुंबई – 400 705.

अन्य समाचार :

1. जैव ईंधन – एक विकल्प के रूप में

हाल में ही अमरीका ने तय किया है कि अगले गैसोलीन की खपत में 20% तक की कमी की जायेगी। यह कमी, अखाद्य पदार्थों के स्टॉक्स (stalks) तथा पंत्तियों में उपलब्ध सेल्युलोज से इथाईल एल्कोहॉल बनाकर पूरी की जायेगी। अभी तक परंपरागत रूप में, मक्के के सेल्युलोज से इथाइल एल्कोहॉल प्राप्त किया जाता है। किन्तु कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि मक्के का उपयोग इस हेतु किया तो इसकी कीमत में बढ़ोतरी हो जायेगी। अमरीका ऊर्जा विभाग ने इसके अनुसंधान हेतु तीन प्रयोगशालाएँ खोली है।

इसके अलावा 'लिग्नो सेल्युलोजिक बायोमास' (ligno celluosic bio mass) के सदस्यों यथा स्विच ग्रास (switch grass), आम पेड़ पौधों को इथाईल एल्कोहॉल बनाने हेतु उपयोग किया जा सकता है।

इसके लिए पौधों में यथोचित संशोधन; लिग्नो सेल्युलोज का शक्कर में विखंड़न की प्रक्रिया की जानकारी; ईंधन संश्लेषण जिसमें माइक्रोबों द्वारा शक्कर परिवर्तन की जानकारी आदि पर अध्ययन चल रहा है । साथ ही साथ यह प्रयास भी किया जा रहा है कि इन सारी अनुसंधानों में समन्वय स्थापित हो।

2. हार्ड ड्रिस्क के विलंब को दूर करने की नयी प्रणाली :

हाल ही में सैमसंग इलेक्ट्रॉनिक्स ने कंप्यूटर के हार्ड ड्रिस्क द्वारा सूचना के अदान प्रदान में होने वाली देरी को कम करने के लिए ठोस अवस्थीय ड्रिस्क का अविष्कार किया है। उपलब्ध हार्ड ड्रिस्क में आम तौर पर एक सेकेंड़ में 100 से 200 आदेशों का परिपालन होता है जब कि इस नयी तकनीक द्वारा 5000 आदेशोंका परिपालन एक सेकंड़ में संभव हो पायेगा। इस तकनिक में प्रयोक्ता के फेवराइट अनुप्रयोग को बैकग्राऊंड़ में तैयार रखा जाता है ताकि न्यूनतम समय में आवश्यक सूचना ड़ाटा प्रयोक्ता को दी जा सके।

3. कोयले के गैसीकरण से उपलब्ध साफ ईंधन :

किसी भी ऐसे उद्योग में जहाँ ऊष्मा की आवश्यकता अत्यधिक है, वहाँ सीन गैस (Syn Gas) एक अच्छा विकल्प है। जैसा कि विदित है की विगत वर्षों में प्राकृतिक गैस की कीमत में बेतहाशा वृद्धि हुई। जिससे ऊर्जा का उत्पाद में हिस्सा पहले 10% प्रतिशत था अब यह 25% तक हो गया है। अत: यह आवश्यक है कि एक नये विकल्प की खोज की जाये ताकि उत्पाद की कीमत में स्थिरता आ सके।

यह गैसीकरण विधि न सिर्फ साफ सुथरी है बल्कि इसे कोयले के अलावे बायोगैस पल्प व पेपर उद्योग के काले लिक्वर (Black Liqour) आदि से भी सीन गैस बनायी जा सकती है। इसमें ठोस या द्रव ईंधन का आर्थिक ऑक्सीकरण होता है, जिसके उत्पाद में अन्य रूप से मीथेन, हाइड्रोजन तथा कार्बन मोनो ऑक्साईड़ होती है। इसमें कुछ परिशोधक, जैसे गंधक, नाइट्रोजन तथा वाष्पशील पारा होता है जिसे आसानी से अलग किया जा सकता है। इस प्रकार सीन गैस भी प्राकृतिक गैस की तरह ही साफ सुथरी ईंधन है।

4. सिरामिक द्वारा ऊर्जा :

हाल ही में फ्रॉन्हॉपर सिरामिक संस्थान के ड़ॉ. माइकेल स्टेलर ने नये प्रकार की सिरामिक फिल्म का आविष्कार किया तथा इसका नाम निम्न तापमान को-फायरड़ सिरामिक रखा। इस पदार्थ को कुछ समय पहले तक माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग में प्रयोग किया जाता था।

अनुसंधानकर्ताओं को किफायती तौर पर नॉन-इलेक्ट्रॉनिक फंक्शनल तत्त्व को सिरामिक से जोड़ने में सफलता मिली है। यह संरचना सिर्फ सतह पर ही नहीं बल्कि पदार्थ के अंदर भी बनायी जा सकती है। इन संरचनाओं के माइक्रो फ्युएल सेल आपस में जुड़े रहते हैं जिससे हाइड्रोजन या द्रव आसानी से आ जा सकता है। यह सरल के साथ-साथ सस्ता भी है।

अब तक की विकसित माइक्रो ईंधन की संरचना कठिन होती थी जिसके कारण इसका व्यावसायिक उत्पादन संभव नहीं हो पाया था। लेकीन नये सल में फॉर्मिक अम्ल, जो कि ऊर्जा का उत्तम स्रोत है, का उपयोग हो सकता है।

5. प्याज से बिजली :

प्याज के छिलके से उत्पादित बायो गैस से विद्युत संयंत्र की स्थापना गिल्स ऑनियन, ऑक्सनार्ड (Gills Onions, Oxnard) कैलिफोर्निया, जो कि प्याज का सबसे बड़ा उत्पादक है, द्वारा की गयी है। इससे कंपनी के ऊर्जा का खर्च काफी कम हो गया है।

इससे न सिर्फ कचरे को फेंकने को समस्या व खर्च में कमी हुई है, बल्कि ऊर्जा के एक नये स्रोत का भी पता चला है।

प्रस्तुति : कवींद्र पाठक
एम. डी. पी. डी. एस.
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085.

6. पदार्थ के यांत्रिक गुणों का अविनाशी परीक्षण :

जी हाँ यंत्रों, उपकरणों में उपयोग हो रहे पदार्थो के यांत्रिक गुण जैसे तनन सामर्थ्य, पराभव सामर्थ्य, विसंर्पण (Creep), कठोरता आदि पदार्थों को बिना नष्ट किए, संभव है। ज्ञातत्व है कि यह प्रयोगशाला में धातु के यांत्रिक गुण को

पता करने के लिए उसे मशीन द्वारा खींचकर, तनन सामर्थ्य तक ले जाया जाता था जिससे धातु खिंचाव से दूर जाता था और खिंचाव वस्तुत: उस पर भार (Load) देने के वजह से होता था। लेकिन ऑकरॉइज लैब, अमरीका के वैज्ञानिक डॉ. फहमी हॉगेग ने स्ट्रेस-स्ट्रेन माइक्रोप्रोब नामक यंत्र में धातु या पदार्थ का यांत्रिक गुण अविनाशी परीक्षण द्वारा पता लगाया है। यह वस्तुत: धातु के संरचना के आधार पर इनका यांत्रिक गुण पता करता है जिसमें स्वचालित बाल संकेतक लगे रहते हैं । इस यंत्र की क्षमता 17.8 कि. न्यूटन है यह प्रतिबल पता करने के लिए 17.8 कि. न्यूटन का दबाव तक ही सीमित है। इससे धातु के स्ट्रक्चरल इंटीग्रीटी, फैक्चर कठोरता,विसर्षण की दर धातु को बिना नष्ट किए अर्थात एन. डी. टी. (अविनाशी परीक्षण) के आधार पर होता है। वस्तुत: अविनाशी परीक्षण धातु के अंदरूनी दोष, वेल्डनीय गुणवत्ता हेतु रेडियोग्राफी, अल्ट्रासोनिक, भंवर धारा द्वारा होता है। उसके ताप-प्रभावित क्षेत्र में विसर्पण की दर देख सकते हैं यदि धातु को ठंड़ा कार्य या गर्म कार्य द्वारा आंतरिक संरचना को प्रभावित किया गया है तो यह मालूम हो सकता है कहाँ-कहाँ धातु का आंतरिक संरचना गड़बड़ा गयी है। इस यंत्र का पेटेन्ट भी अमरिका ने करा लिया है जिसका नं यू. एस. पेटेन्ट नं-4,852,397 है। और इस कार्य के लिए एडवांस टेक्नोलॉजी कारपोरेशन (A.T.C), ऑक्राइज लैब, अमरीका को राष्ट्रपति द्वारा तकनीकी क्षेत्र में पुरस्कार दिया गया है। लेकिन इस यंत्र की खामियां यह है कि यह सिर्फ कार्बनएलॉय वाले धातु या वेल्ड का यांत्रिक गुण पता कर सकता है इसका कारण यह है कि कार्बन से धातु की कठोरता का अध्ययन किया जाता है और उसके रसायनिक विश्लेषण (स्पेक्ट्रोमिति द्वारा) के आधार पर यांत्रिक गुण मालूम हो सकते हैं।

7. एलियन्स का रोमांच और गहराया :

पृथ्वी के इतर ब्रह्मांड में जीवन की तलाश में जुटे वैज्ञानिकों ने 5 फरवरी 2008 को एक अनूठा प्रयास किया। नासा के वैज्ञानिकों ने पहली बार प्रख्यात बीटल्स की धुन को अपने विशेष रडार की सहायता से पृथ्वी से लाखों किलोमीटर दूर स्थित नॉर्थ स्टार पोलोरिस तक भेजा। यह अनोखा प्रयास भारतीय समय के अनुसार मंगलवार, 5 फरवरी की सुबह के पाँच बजकर पैंतीस मिनट के उपरांत किया गया। नॉर्थ पोलोरिस पृथ्वी से 434 प्रकाश वर्ष दूर स्थित है। बीटल्स की धुन अंतरिक्ष में 3×10^8 मीटर प्रति सेकेण्ड (प्रकाश का वेग) की रफ्तार से गई है। नासा के वैज्ञानिकों में एक डॉ. बैरी के अनुसार, अब तक पृथ्वी से बाहर अंतरिक्ष में प्राणि या जीवन के बारे में हमारी जानकारी काफी कम थी । लेकिन बीटल्स उनके अनुसार पहली बार ध्वनि को दूसरे ग्रह में भेजना संभव हुआ जिसमें संगीत के माध्यम से दूसरे ग्रह के वासियों या एलियन से बात करने की कोशिश की गई है। उन्हें उम्मीद है इसका जबाब सिगनल के माध्यम से अवश्य मिलेगा । बीटल्स ग्रुप में शामिल डॉ. मैक कार्टनी ने नासा द्वारा धुन को प्रक्षेपित करने के बाद काफी उत्साहित थे उन्होंने अंतरराष्ट्रीय स्पेस स्टेशन को भेजे गए संदेश में कहा कि एलियन्स को मेरा प्यार देना । हालांकि इससे पहले सितम्बर 2005 में ध्वनि संकेतों को नासा द्वारा भेजा गया था जिसका कोई जबाव एलियन्स द्वारा नहीं आया है।

प्रस्तुति : **संजय गोस्वामी**
एन. आर. जी., भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085.

पृष्ठ 33 का शेष भाग.....

21 राष्ट्रों ने मत में भाग नहीं लिया इसके बाद भी समय-समय पर निरस्त्रीकरण संबंधी बैठकें एवं संधियां होती रहती है । किन्तु कुछ परमाणु शक्ति संपन्न देशों की दादागिरी के चलते परमाणु निरस्त्रीकरण संधि पर पूर्णरूपेण अमल नहीं हो पा रहा है और नहीं भविष्य में एक मत होने की उम्मीद है। हाल ही में ईरान परमाणु मुददे ने इसे और उलझा कर रख दिया है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि सभी परमाणु शक्ति संपन्न देश एक मत होकर विश्व के विनाश के लिए तत्पर इस नाभिकीय प्रदूषण को रोकने हेतु तत्काल कदम उठाएँ एवं निम्नलिखित सुझावों को क्रियान्वित कर विश्व को विनाश से बचाने का प्रयास करें -

1. परमाणु बम एवं अन्य नाभिकीय बमों के निर्माण पर पूर्णत: रोक लगायी जाय ।
2. विश्व के नाभिकीय भण्डारों को नष्ट किया जाय, ताकि नाभिकीय युद्ध से बचाव जो सके ।
3. अंतर्राष्ट्रीय कानून बनाकर जल मण्डल, स्थलमण्डल एवं वायुमण्डल में परमाणुं बमों के परीक्षण पर रोक लगाई जाय।
4. परमाणु विद्युत गृहों से उत्पन्न कचरे के निस्तारण को उपयुक्त तकनीकी का विकास किया जाय और ऐसे स्थान पर विसर्जन न किया जाय, जहाँ से रेडियोधर्मी विकिरण का प्रभाव मानव, जीव-जन्तुओं एचं वनस्पतियों पर पड़े ।
5. विश्व की महाशक्तियों के मध्य स्थायी रूप से मैत्री भाव का संचार ।
6. नाभिकीय ऊर्जा के सुरक्षात्मक उपायों पर अंतर्राष्ट्रीय समझौते ।
7. सुरक्षात्मक उपायों पर संचार साधनों के माध्यमों से जन जागृति ।

कुछ फूल-कुछ कांटे

"वैज्ञानिक" का अप्रैल-सितंबर 2007 वाला प्रतियोगिता विशेषांक (अंक 2/3) प्राप्त हुआ, धन्यवाद ! हमेशा की तरह संपादकीय ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ विचारोत्तेजक है। विज्ञान शिक्षण के संदर्भ में कुछ सामयिक किन्तु चिन्तनीय पहलू पर बड़ी विवेक पूर्ण समीक्षा की गई है। यह सच है कि भारत में ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व की जनसंख्या में वृध्दि एक चुनौती है। इससे निबटने के लिए औद्योगीकरण के अतिरिक्त कदाचित अन्य कोई विकल्प नही है। औद्योगीकरण का आधार प्रौद्योगिकी एवं अभियांत्रिकी ही हैं और विज्ञान एवं गणित उसके प्राण है। अत: ज्ञान पर आधारित अर्थव्यवस्था (Knowledge based Economy) की बातें चल रही हैं-अतएव तद्नुरूप विज्ञान एवं गणित के शिक्षण-प्रशिक्षण में भी संशोधन की आवश्यकता है। साथ साथ इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि अभिभावक बालकों को उनकी रुचि के अनुसार विषय चुनने की स्वतंत्रता दें, प्रौद्योगिकी एवं अभियांत्रिकी के प्रति व्यामोह एवं पूर्वाग्रह त्यागें। समाज को भी शोध वैज्ञानिकों एवं गणितज्ञों को यथोचित सम्मान देना होगा। सरकार एवं अन्य उद्योगपतियों को शोध वैज्ञानिकों के सुख-सुविधाओं एवं वेतन को समान दृष्टि से देखना चाहिये। मूलभूत विषयों पर शोधकार्य विश्वस्तर का होना चाहिये और उपयोग पर आधारित शोध कार्य ऐसा हो जिसे प्रौद्योगिकी आसानी से अपना सके।

विज्ञान के शिक्षकों को भी नवीनतम शिक्षण पद्धतियों एवं साधनों के बारे में समुचित प्रशिक्षण देना होगा। लब्ध प्रतिष्ठित वैज्ञानिक शिक्षण के क्षेत्र से जुड़े रहें-अध्ययन अध्यापन से संबंध बनाये रखें इससे विद्यार्थियों में वैज्ञानिक सोच (Scientific Temper) को प्रोत्साहन मिलेगा। ग्लेन सीबोर्ग जैसे विश्व विख्यात वैज्ञानिक जीवन पर्यन्त अध्ययन-अध्यापन से जुड़े रहे।

विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में भारतीय परमाणु विभाग ने एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है। भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के मूलप्रेरक तत्त्वों में विज्ञान शिक्षण पर विशेष महत्व दिया गया है। ऐसा अन्य क्षेत्रों में प्राय: देखने को नहीं मिलता यह गर्व एवं हर्ष का विषय है।

"वैज्ञानिक" के इस विशेषांक में विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2006) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त-डॉ. राज किशोर का "चॉकलेट" पर लेख ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजक है। "न्यूट्रीशनल जीनोमिक्स" (जसप्रीत कौर), मानव मस्तिष्क अनंत संभावनाओं का द्वार (आलोककुमार मिश्र एवं डॉ. कृष्णकुमार मिश्र), "हृदय-धड़कनों से खामोशी तक का सफर" (कु. राशी मेहरोत्रा), "विकिरण चिकित्सा-स्वावलंबन की ओर बढ़ते कदम" (भास्कर पाल) जैसे लेखों ने इस अंक को संग्रहणीय बना दिया है। शुभकामनाएं।

देवदत्त बाजपेयी
202/4, सागर दर्शन, सेक्टर-18,
नेरूल, नवी मुंबई-400 706.

"वैज्ञानिक" का अप्रैल-सितंबर 2007 का अंक, जो प्रतियोगिता विशेषांक था काफी रोचक, ज्ञानवर्धक एवं वस्तुपरक था। विज्ञान समाचार, भा. प. अ. केंद्र काफी अच्छा लगा। इससे केंद्र की वैज्ञानिक गतिविधि को संयोजने का अवसर मिलता है और जिससे इसकी उत्कृष्टता का पता जन सामान्य को मिलता है। इसके लिए डॉ. कैलाश चन्द्र भल्ला बधाई के पात्र हैं जो सेवानिवृत्त होने के बावजूद "वैज्ञानिक" के महत्त्वपूर्ण कॉलम में अपना अहम योगदान देते हैं। इससे संबंधित पृष्ठ 68 में ध्वनि उत्सर्जन विश्लेषण प्रणाली, आधुनिक परीक्षण क्षेत्रों के लिए काफी महत्त्वपूर्ण है। इसके द्वारा यंत्रों / उपकरणों का अविनाशी परीक्षण किया जाता है जब वह गतिकी अवस्था में रहता है। जहाँ अन्य अविनाशी परीक्षण जैसे रेडियोग्राफी, पराश्रव्य ध्वनि (अल्ट्रासोनिक) माप नहीं किये जा सकते हैं क्योंकि गति की अवस्था में यंत्र में कंपन रहता है जिससे परीक्षण करने में बाधा होती है। रेडियोग्राफी में फिल्म हिलने लगती है। पराश्रव्य तरंगों में प्रतिध्वनि की ऊंचाई नहीं मिल पाती है और डेड जोन (Dead Zone) तैयार हो जाता है। इसके लिए ध्वनि उत्सजर्नक परीक्षण (Acaustic Emission testing) मात्र एक ही विकल्प है, जो न सिर्फ यंत्रों की गतिकी अवस्था में अविनाशी परीक्षण करता है बल्कि सूक्ष्म से सूक्ष्म त्रुटि को भी स्केन कर लेता है। यह पराश्रव्य ध्वनि परीक्षण से अधिक कारगर है क्योकिं परीश्रव्य ध्वनि परीक्षण में प्रोब अधिक आवृत्ति के होते हैं जिससे प्रकीर्णन होता है और सूक्ष्म त्रुटि का पता सही ढंग से नहीं चला पाता है लेकिन ध्वनि उत्सर्जन तकनीकी में प्रोब (पीजो इलेक्ट्रिक) 500 RH_2 से 2 MH_2 तक का होता है एवं प्रकीर्णन से बचाने के लिए प्री. एंप्लीफाइर, फिल्टर, टोटालाइजर आदि का इस्तेमाल डाटा विश्लेषण में किया जाता है। यह इतना सुग्राही होता है कि भूकंप का भी पता चल सकता है। इससे न सिर्फ धातु में ही परीक्षण किया जाता है बल्कि पॉलीमर, सिरामिक्स एवं काँक्रीट में भी दरार की प्रवृत्ति जानने, दोष का पता लगाने के लिए किया जाता है।

- संजय गोस्वामी,
एन. आर. जी.
बी. ए. आर. सी, मुंबई - 400 085.

"वैज्ञानिक के वर्ष 39 (2/3) अंक की प्रति प्राप्त हुई। धन्यवाद। इस पत्रिका से यह साफ साबित होता है कि वैज्ञानिक विषयों पर हिंदी में सुंदर लेखों की रचना संभव है। साथ ही अन्य तकनीकी विषयों के लेख भी समाहित हुए हैं, जो पत्रिका की पठनीयता को बढ़ाता है। पत्रिका के आगामी अंकों हेतु शुभकामनाएँ....

डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल
मुख्य प्रबंधक - कार्पोरेशन बैंक
मंगलादेवी मंदिर मार्ग, पोस्ट बॉक्स सं. 88,
मंगललूर - 575 001.

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2007) के परिणाम

प्रथम पुरस्कार : **श्री. सुभाषचंद्र**
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान,
लखनऊ - 226 001.

द्वितीय पुरस्कार : **डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार**
गायत्री नगर, दमोह(म.प्र.) - 470 661.

तृतीय पुरस्कार : (1) **श्री. आलोक कुमार मिश्र**
होमी भाभा विज्ञान शिक्षण केंद्र,
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान,
मुंबई - 400 088.

(2) **सुश्री. जसप्रीत कौर**
500/209, कुतुबपुर,
रामाधोम सिंह रोड,
डालीगंज, लखनऊ(उ.प्र.)-226 020.

प्रोत्साहन पुरस्कार : (1) **सुश्री. आलोक प्रमोद-**
5/41, विराम खंड-5, गोमती नगर,
लखनऊ (उ.प्र.) - 226 010.

(2) **डॉ. (श्रीमती) कनक सहाय एवं**
डॉ. अंकिता सहाय
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान,
लखनऊ (उ.प्र.)-226 001.

प्रोत्साहन पुरस्कार (अहिंदी वर्ग) : (1) **श्री. सयाजी मेहेत्रे**
आण्विकजीव विज्ञान प्रभाग,
भामा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई-400 085.

(2) **श्री. के. जे. लंगालिया,**
श्री. एस. एल. जोशी एवं वी. पी. मोहनदास
नमक तथा समुद्री रसायन विभाग,
केंद्रीय नमक समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान,
भावनगर (गुजरात) - 364 002.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ.केंद्र, ट्रांबे, मुंबई- 85 के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित एवं श्री. कुलवंत सिंह द्वारा रॉयल एन्टरप्राइजेस, चेंबूर, मुंबई-71. (फोन : 25234229) में मुद्रित व प्रकाशित ।

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R.No. : 18862/70

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत ।

'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद'
की
वैज्ञानिक मोनोग्राफ प्रकाशन योजना

परिषद ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर मोनोग्राफ (पृष्ठ संख्या लगभग 64, 96, 128, 192, 256) प्रकाशित करने की एक योजना बनायी है । इस कार्य के लिए उचित मानदेय, (120 रु. प्रतिपृष्ठ लेखन एवं टंकण, चित्रों इत्यादि के लिए अलग) देने का प्रावधान है । परंतु प्रकाशित सभी पुस्तकों पर परिषद के सर्वाधिकार सुरक्षित रहेंगे । विषय-विशेषज्ञों से लगभग 5-6 पृष्ठों में पुस्तकों की विस्तृत रूपरेखाएं आमंत्रित हैं । जिसमें अध्याय, अनुच्छेद, संदर्भ सूची इत्यादि की जानकारी हो ।

मोनोग्राफ मुख्य वैज्ञानिक विषयों यथा नाभिकीय, ताप रसायन, जीव विज्ञान आदि पर न होकर उप-विषय, जैसे आइसोटोप, लेसर, रेडियोधिर्मिता, अतिचालकता आदि पर हों । उदाहरणार्थ कुछ उप-विषयों के सुझाव इस प्रकार हैं :

- **नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग**
- **नाभिकीय रिएक्टर**
- **नाभिकीय ईंधन - यूरेनियम, प्लूटोनियम**
- **नाभिकीय पदार्थ - कवच, मंदक, परिरक्षक एवं अन्य**
- **आइसोटोप उत्पादन व उपयोग**
- **रेडियोसक्रिय विकिरण व उनके उपयोग**
- **नाभिकीय ऊर्जा एवं सुरक्षा**
- **एजिंग (काल प्रवाहन) एवं डिकमीशनिंग**
- **ईंधन पुनर्संसाधन**
- **अन्य संबद्ध कार्य**

रूपरेखाओं का मूल्यांकन परिषद द्वारा गठित एक विशेष समिति करेगी । मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद लेखक को परिषद के साथ लेखन कार्य संबंधी अनुबंध पर हस्ताक्षर करने होंगे । इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए परिषद सचिव से इस पते पर संपर्क करें : **श्री जयप्रकाश त्रिपाठी,** प्रभारी अधिकारी, न्यूक्लीयर मैटेरियल मैनेजमेंट अनुभाग, पी.पी., एफ. आर. डी. (F.D.R.), भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400 085.

E-mail:jptripathi@rediffmail.com
Tel. : 022-2559 1224